हिन्द - रक्षक

श्री गुरू तेग़ बहादुर जी



डॉ० निर्मल कौशिक
कामायनी कौशिक

हिन्द - रक्षक
श्री गुरू तेग बहादुर जी

डा० निर्मल कौशिक,
प्रवक्ता हिन्दी विभाग,
सरकारी बृजेन्द्र कालेज,
फरीदकोट-151203
एवम्
श्रीमती कामायनी कौशिक
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
केन्द्रीय विद्यालय, फरीदकोट-151203

कादम्बरी प्रकाशन, बाजार बाँसावाला, फिरोजपुर शहर-152002

HIND RAKSHAK

Sri Guru Teg Bahadur Ji

By : Dr. NIRMAL KAUSHIK

Mrs. KAMAYANI KAUSHIK

डा० निर्मल कौशिक

कामायनी कौशिक

आवरण सज्जा : विमल तिवारी

प्रथम बार : 1993

मुल्य सामान्य : 50/-

सजिल्द : 60/- रूपये

प्रकाशक : पंडित कर्म चन्द शर्मा,
कादम्बरी प्रकाशन,
बाजार बांसां वाला,
फिरोजपुर शहर 152002

मुद्रक :-
क्वालिटी प्रिंटिंग कम्पनी,
होटल म्यूर, अमृतसर ।

अनुक्रम

लेखकीय

कोई भी कार्य ईश्वरीय प्रेरणा के बिना सम्पन्न नहीं होता। काफी समय से 'नवमेश श्री गुरु तेग बहादुर जी' की वाणी के अध्ययन और अध्यापन का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। उनकी वाणी को पढ़कर ऐसा लगता है कि इस निस्सार संसार में मानव मन, की भटकन को दूर करने का सरलतम और सुन्दरतम उपाय यही है नाम और ज्ञान की पराकाष्ठा का अद्वितीय संगम प्रस्तुत वाणी 'अभय पद' प्रदान करने में सक्षम है। इहलोक और परलोक के लिए लाभप्रद इस वाणी की महत्ता को ध्यान में रखते हुए अनेक संस्थाओं और संस्थानों ने श्री गुरु तेग बहादुर जी की वाणी पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर उनके संदेश को घर-घर पहुंचाने का पुण्य कार्य किया।

कुछ समय पूर्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक शोध कर्ता डा० त्रिलोचन सिंह [अब स्वर्गवासी] की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद सक्षिप्त जीवन : श्री गुरु तेग बहादुर' दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, सीस गंज, चांदनी चौक दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया है। सौभाग्यवश इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद इस पुस्तक की सह लेखिका श्रीमती कामायनी द्वारा किया गया है। इसी पुस्तक से प्रेरणा लेकर हमने गुरु जी की वाणी के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं को आम जनता तथा विद्यार्थियों तक पहुचाने का लघु प्रयास किया है। उनकी वाणी जीवन के रहस्यों तथा तथ्यों को खोल कर रख देती है। पुस्तक के अन्त में नवमेश की वाणी का सम्पादन कर सरल अर्थ भी दिया गया है ताकि उनका अनुभव और सन्देश जन जन तक पहुंच सके।

प्रस्तुत परियोजना मान्यवर डा० हरमदेन्द्र सिंह बेदी, डी लिट प्रोफैसर हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर की प्रेरणा एवं सहयोग से साकार हुई है। लेखक द्वय उनके आभारी हैं। डा० शमीर सिंह, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, खालसा कालेज, अमृतसर ने इस पुस्तक के संशोधन हेतु प्रूफ पढ़ने का काम अत्यन्त सुचारू ढंग से किया। हार्दिक धन्यवाद, क्वालिटी प्रिंटिंग कम्पनी, होटल मयूर, माडल टाउन, अमृतसर के व्यवस्थापक एवं कर्मचारी वर्ग का प्रयास अत्यन्त स्तुत्य है; जिन्होंने इस पुस्तक को सुन्दर स्वरुप प्रदान किया तथा अविस्मरणीय योगदान दिया। लेखक द्वय की ओर से बहुत-2 धन्यवाद।

अगर प्रस्तुत पुस्तक 'नवमेश श्री गुरु तेग बहादुर जी के सन्देश को सामान्य पाठक तक पहुंचाने में सार्थक सिद्ध हुई तो हम अपने प्रयास को सफल समझेंगे।

निर्मल कौशिक [डा०]
कामायनी कौशिक

श्री गुरु तेग बहादुर संक्षिप्त जीवन परिचय

शहीद-शिरोमणि, धर्म-रक्षक, मानवता की रक्षा हेतु बलिदान की अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करने वाले तेग के धनी श्री गुरु तेग बहादुर इतिहास में 'हिन्द दी चादर' के नाम से विश्व विख्यात हैं। आप ने तप और त्याग के आधार पर अपने व्यक्तित्व को इस ढंग से उभारा कि कोई भी आप का बाल बांका न कर सका। आप ने अपने अन्दर निर्भयता और आत्मविश्वास जैसे गुणों को विकसित किया। आप एक विलक्षण और सर्वतोन्मुखी व्यक्तित्व के स्वामी थे।

महामानव श्री गुरु तेग बहादुर का जन्म पंजाब के पवित्र नगर श्री अमृतसर में छठे गुरु श्री हरि गोबिंन्द जी के घर 5 बैशाख संवत् 1678 विक्रमी(अर्थात् एक अप्रैल सन् 1621 ई.) को हुआ। अब यह स्थान 'गुरु के महल' नाम से प्रसिद्ध है। इनकी माता नानकी जो कि स्नेह और उदारता की साक्षात् प्रतिमा थीं, उन्होंने ने इनका नाम त्यागमल (चन्द) रखा। आप अपने चार भाइयों गुरदिता, अणीराय, अटलराम तथा सूरजमल से छोटे थे। आप बाल्यकाल से ही अपना अधिकांश समय अध्यात्म-चिन्तन में ही व्यतीत करते थे। आपके पिता श्री गुरु हरि गोबिन्द जी ने अपने पिता पंचमेश श्री गुरु अर्जुन देव जी के बलिदान के बाद जनता में वीरता और आध्यात्मिकता का एक साथ संचार करने हेतु 'मीरी' तथा 'पीरी' दो तलवारों को एक साथ धारण किया।

आप का बचपन अमृतसर में ही व्यतीत हुआ। आपका पालन-पोषण अत्यन्त लाड और प्यार से हुआ। आपकी माता जी आपको धार्मिक शिक्षा दिया करती थी। इस शिक्षा का आपके मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। आप साधना की ओर प्रवृत्त हुए। इसके साथ-साथ आपको शस्त्र-विद्या,संगीत, धर्म और राजनीतिक की शिक्षा भी दी गई। आरंम्भिक शिक्षा आपको बाबा बुड्ढा जी से प्राप्त हुई। आप ने पंजाबी के साथ-साथ ब्रज-भाषा (हिन्दी) का भी ज्ञान प्राप्त किया। सिख धर्म-दर्शन के अधिकारी विद्वान् भाई गुरदास जी ने

आपको दर्शन-शास्त्र, गुरवाणी आदि की शिक्षा दी। शस्त्र विद्या देने वालों में भाई जतीमल का नाम प्रमुख है। संगीत शास्त्र आपने उस समय के प्रसिद्ध संगीतकार बाबक तथा अब्दुल्ला से सीखा। दस वर्ष की आयु में आप अपने परिवारसहित करतारपुर आ गए। वहीं 13 वर्ष की आयु में आपका विवाह वहां के निवासी लालचन्द की सुपुत्री गुजरी के साथ सम्पन्न हुआ। उसी समय उस समय के बादशाह शाहजहां के साथ आपके पिता(छठे गुरु श्री हरि गोबिन्द जी) का युद्व छिड़ गया। आपकी आयु केवल १४ वर्ष की थी। आपने युद्ध में अनेक शूरवीरता के कौतुक दिखाए। आपकी सेना की विजय हुई तभी से आप तेग बहादुर के नाम से प्रसिद्ध हुए। मगर दूसरी ओर युद्व के भीषण रक्तपात और अनेक हत्याओं को देख कर आपके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और आप उदासीन रहने लगे। अनासक्ति की ओर उन्मुख होकर आध्यात्मिक चिन्तन में लग गए।

गुरु हरि गोबिन्द जी ने बाबा गुरुदित्ता जी के अकाल निधन के पश्चात् उनके पुत्र धीरमल को करतारपुर से बुलवाया तथा आज्ञा दी कि वे 'सिरी गुरू ग्रन्थ साहिब की "बीड़" लेकर कीरतपुर आ जाएँ। गुरु जी वास्तव में उनकी परीक्षा लेकर 'दस्तारबन्दी' की रस्म पूरी करना चाहते थे। परन्तु धीरमल ने ऐसा नहीं किया।अत: गुरु जी ने अपने पौत्र हरिराय जी को सन् 1944 ई. में विधिवत् गुरु-गद्दी प्रदान कर दी। गुरु हरि गोबिन्द जी ने श्री हरिराय जी को गुरु गद्दी प्रदान करने के उपरान्त स्वंय भौतिक शरीर त्यागने से पूर्व माता नानकी जी को तेग़ बहुदर जी को साथ लेकर 'बकाला' जा कर रहने का आदेश दिया। तेग बहादुर जी को गद्दी न मिलने की तनिक भी आपत्ति न थी। आप 'बकाला' आ कर अपना अधिकांश समय ईश्वर-भक्ति में लीन करने लगे। इस समय आप 23 वर्ष के थे।

आपने बकाला में रहकर लगभग 20 वर्ष तक कठिन साधना की। वह अपना अधिकांश समय ईश्वर स्मरण और कीर्तन में लगाया करते थे। आपकी इस आराधना ने आपको सांसारिक नश्वरता को तथा आत्मा की शाश्वता

को समझने का बल प्रदान किया। इसी समय गुरु हरिराय जी अपने छोटे सुपुत्र हरिकृष्ण को गुरु गद्दी प्रदान कर 1661 के ई. में स्वंग सिधारे। गुरु हरिकृष्ण जी ने गुरु नानक देव जी के आध्यात्मिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप में जनता तक पहुंचाया। मगर अचानक चेचक रोग से ग्रस्त होने के कारण अधिक समय तक गुरु गद्दी पर विराजमान नहीं रह सके। गुरु हरिकृष्ण जी ने महाप्रस्थान से पूर्व अपने शिष्यों को इकट्ठा किया और "बाबा जी आहि बकाले" कह कर नश्वर शरीर त्याग गए।

इस समाचार को सुनते ही गुरु घर से सम्बन्धित धीरमल तथा अन्य बाईस सोढी वंश के लोग अपने आपको गुरु गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित करने के लिए 'बकाला' आ गए। अपने आपको हरिकृष्ण द्वारा घोषित 'बाबा' कहने लगे। सिक्ख संगत असमंजस में पड़ गई कि आखिर सच्चा और वास्तविक गुरु कौन है? मक्खन शाह लबाणा जो कि गुरु जी का अनन्य भक्त था। वह टांडा लबाणा, जिला मुजफराबाद, कश्मीर का निवासी था एक बार उसने अपनी किश्ती फंस जाने पर पाँच सौ मोहरें चढ़ाने की मन्नत मानी और अपने गुरु को याद किया। उसकी किश्ती निकल गई। लेकिन 'बकाला' में आकर वह भी सोच में पड़ गया कि वह अपनी मन्नत की पाँच सौ मोहरें किसे चढ़ाए। अन्त में उसने दो मोहरें चढ़ा कर गुरु तेग बहादुर जी के आगे मत्था टेका। तो गुरु तेग बहादुर ने कहा कि तुमने तो पाँच सौ मोंहरें चढ़ाने को कहा था। गुरु जी के शब्द सुन कर वह खुशी से नाच उठा और छत पर चढ़ कर ऊंची आवाज़ में कहने लगा। "गुरु भाधो रे" अथात् गुरु मिल गए हैं। मक्खन शाह के इन शब्दों को सुनकर सिक्ख संगत गुरु जी के दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी। इस प्रकार सन् 1664 ई. को गुरु तेग बहादुर जी को विधिवत् गुरु गद्दी सौंप दी गई।

धीरमल के पाखण्डी और स्वार्थी साथी गुरुओं के लिए अब बकाला में कोई स्थान न था। वे सब वहां से चले गए। बाद में धीरमल ने अपने साथियों सहित गुरु जी पर आक्रमण किया और उनका सामान लूट लिया।

को यहीं छोड़ कर आसाम की ओर प्रस्थान किया। मगर आसाम जाते समय आप पटना से मुंगेर, भालमपुर, कोक गांव, राजमहल, कंत नगर और मालदा होते हुए ढाका पहुंचे। ढाका में गुरु जी ने सिक्ख-सगंतों को इक्ठा करके गुरु नानक देव जी के सन्देश को जनता में पहुचांने का कार्य सौंपा। जिस स्थान पर गुरु जी ढाका में रुके थे वह आज भी 'संगत टीला' के नाम से प्रसिद्ध है। यहां से आसाम की ओर जाते हुए राजा राम सिंह से आप की भेंट हुई। गुरु जी की सहायता से उसने आसाम को विजय किया और वापस पटना लौट आए।

इसी बीच औरंगजेब ने अपना दमनच्रक और तेज़ कर दिया था।गुरु जी को विदित हो गया था कि औरंगजेब किस प्रकार से घृणित कार्य करके और जनता पर घोर अत्याचार करके इस्लाम धर्म फैला रहा है। सारी स्थिति को जानकर गुरु जी इस समय शीघ्र ही पंजाब लौटना चाहते थे। गुरु जी इस विकट घड़ी में अपने कुछ श्रद्धालु सेवकों के साथ आनन्दपुर लौट आए।बाद में इनका पूरा परिवार भी इनके पास आनन्दपुर पहुंच गया। गुरु जी ने आनन्दपुर में आकर हिन्दू-धर्म की दीन हीन दशा को भांप लिया था। आपने ओरंगजेब के साथ टक्कर लेने के लिए लोगों को एक धरातल पर एक साथ जुट जाने के लिए प्रेरित किया।

उधर ओरंगजेब ने हिन्दु धर्म के प्रतिनिधि वर्ग (ब्राह्मणों) को इस्लाम धर्म स्वीकार कराने का निश्चय कर लिया था। उसने सोचा कि अगर यह (ब्राह्मण) वर्ग इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता है तो पूरा देश इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेगा। इसी लिए वह नित्य प्रति अनेक ब्राह्मणों को मौत के घाट उतारने लगा या फिर बलात् मुस्लमान बना लेता। सम्राट के संकेत पर कशमीर के सूबेदार ने हिन्दुओं को मौत के घाट उतारना शुरु कर दिया। इस प्रकार हिन्दुत्व का विनाश होते देख कशमीर का ब्राह्मण वर्ग पं. कृपाराम के नेतृत्व में आनन्दपुर में श्री गुरु तेग बहादुर जी के पास आए गुरु जी से अपनी रक्षार्थ निवेदन किया। गुरु जी ब्राह्मणों की इस व्यथा को सुन कर चिन्तामग्न हो गए। इतने

में गुरु जी के पुत्र गोबिन्दराय जो कि उस समय केवल नौ वर्ष के थे, आ गए। बालक गोबिन्दराय ने पूछा कि पिता जी किस सोच में बैठे हो? तो पिता जी ने उत्तर दिया 'बेटे देश पर संकट आन पड़ा है उसकी रक्षा के लिए किसी महान व्यक्ति के बलिदान की आवश्यकता है। गोबिन्दराय ने झट-पट उत्तर दिया कि "महाराज आपसे बढ़कर कौन अन्य महापुरुष हो सकता है?" गुरु तेग बहादुर जी ने गोबिन्दराय से प्रेरणा पा कर कशमीरी पंडितों से कहा कि अपने सूबेदार से कह दो कि यदि हमारे गुरु तेग बहादुर मुस्लमान बन जाएँ तो हम सब प्रसन्नतापूर्वक आपका धर्म ग्रहण कर लेंगे। उनका धर्म ही हमारा धर्म होगा।

कशमीरी ब्राह्मणों द्वारा दिया गया गुरु जी का सन्देश व निर्णय औरंगजेब तक पहुंच गया। औरंगजेब ने गुरु जी को दिल्ली बुलाया। मगर सन्देश मिलने से पहले ही गुरु जी दिल्ली की ओर प्रस्थान कर चुके थे। मार्ग में गुरु जी योजनाबद्ध ढंग से जनता में एक चेतना का निमार्ण कर रहे थे। ताकि शासक से टक्कर ली जा सके। दिल्ली पहुंचते ही गुरु जी को कैद कर लिया गया। अब अत्याचारों का दौर आरम्भ हुआ। कुछ सेवक जो गुरु जी के साथ थे उन्हें भयंकर यातनाएं दी गई। भाई मती दास को आरे के साथ धीर-धीरे चिरवा कर दो टूक कर दिया गया। भाई दिआला जी को खौलती देग में शहीद कर दिया गया। भाई सतीदास का अंग-अंग काट डाला गया। गुरु जी को यह सब घटनाएं भयभीत नहीं कर सकीं। गुरु जी की आत्मा की अमरता और शरीर की नश्वरता का रहस्य जान चुके थे। अन्त में गुरु जी से कहा गया 'या तो कोई करामात दिखाओ अथवा मुस्लमान बन जाओ' गुरु जी ने दोनों बातें मानने से इन्कार कर दिया। इस पर जल्लादों ने इनका सिर धड़ से अलग कर दिया। ज्योति परम ज्योति में लीन हो गई। यह घटना 11 नवम्बर सन् 1675 को दिल्ली के चान्दनी चौक में घटित हुई। यहां आजकल गुरुद्वारा 'सीसगंज' स्थित है।कहा जाता है इस समय जोरदार आंधी आई। लोगो की अपार भीड़ गुरु जी के दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी। इतने में भाई जैता न

अत्यन्त स्फूर्ति से गुरु जी का सिर उठाया और आंखों से ओझल हो गया। न जाने किस तरह वह आनन्दपुर पहुंच गया। वहां पर गोबिन्दराय ने अपने अमर बलिदानी पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी के शीश का अन्तिम संस्कार किया। इसी आंधी और तूफान का लाभ उठा कर गुरु जी का एक अन्य भक्त जो कि उस समय वहां से पशु ले कर अपने गांव की ओर जा रहा था, उसने अन्य साथियों की सहायता से गुरु जी का धड़ उठाया और एक कमरे में बन्द करके, कमरे को अग्नि की भेंट का दिया। यह स्थान आजकल गुरुद्वारा 'रकाब गंज' के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार गुरु तेग बहादुर जी ने हिन्दू-धर्म की रश्रा हेतु अपने प्राणों की आहुति देकर अपने जीवन को सार्थक किया।

गुरु जी का आत्म-बलिदान अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध एक चुनौती थी। उन्होंनें आत्म-संयम और निर्भीकता से हर स्थिति का सामना किया। शासक की शक्ति उनकी आवाज़ को कभी नहीं दबा सकी। जिन महापुरुषों का जीवन उस प्रभु को समर्पित होता है और जिनके हृदय में सदैव उस अद्वैत सत्ता का प्रकाश विद्यमान रहता है वे अपने आदर्श में सुदृढ़ रहते हैं।

गुरु जी की कथनी और करनी एक समान थी।उन्होंने अपनी सतत्-साधना से जो अनुभव अर्जित किया। उसे अपनी वाणी द्वारा जन-जन तक पहुंचाया। गुरु जी के जीवन, व्यवहार और प्रचार लक्ष्य था धर्म की स्थिरता, जिसे उन्होंने अपने प्राणों की आहुति देकर सत्य सिद्ध कर दिखाया और श्री गुरु तेग बहादुर जी का अमर बलिदान पूरे विश्व में अपनी उदाहरण आप है। उनका बलिदान किसी स्वार्थ हित न होकर पूरे राष्ट्र की रक्षा के लिए था। उनके इस बलिदान की गाथा को सुनकर स्वत: ही शीश उनके आगे श्रद्धा से झुक जाता है। सत्य, धर्म, न्याय, सदाचार, निर्भयता तथा मानव मूल्यों की रक्षा हेतु दिया गया यह बलिदान विश्व के इतिहास में सदैव उनकी याद दिलाता रहेगा।

श्री गुरु तेग बहादुर : विलक्षण व्यक्तित्व

श्री गुरु तेग बहादुर एक आदर्श महामानव, भक्त, महात्मा तथा सन्त थे। उन्होंने अपनी अनन्य निष्ठा और साधना से ईश्वर की भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। भारतीय साहित्येतिहास की मध्यकालीन भक्ति काव्य धारा के अक्षुण्य प्रवाह में ईश्वर भक्ति सम्बन्धी कविताओं के रचियता और धर्म प्रचारकों को विशेषत: जिन्होंने निगुर्णा ईश्वर का प्रचार किया, उन्हें संत की संज्ञा से अभिहित किया गया। इस दृष्टि से संत आदर्श महामानव , ज्ञानी, भगवत गीता के 'स्थितप्रज्ञ' और 'सुखमनी साहिब' के 'ब्रह्म ज्ञानी' को कहा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संत पारब्रह्म को जान कर ब्रह्म ही हो जाता है। तुलसीदास ने भी कहा है, "आनहु सन्त अनन्त समाना" गुरु तेग बहुदर जी के जीवन का और उनकी वाणी का अध्ययन करते हुए हमें उनके सन्त स्वरूप के साथात् दर्शन होते हैं। वे त्याग, तपस्या, साधना, भगवद् भक्ति, वैराग्य, पर दुख कातरता, निर्भयता, परोपकार, करुणा, दया, संयम एवं क्षमा आदि गुणों के कारण सन्तों के सिरताज कहे जा सकते हैं, इन्ही मानवीय गुणों के कारण वे विश्व-विख्यात हो गए। वे बचपन से ही भगवद् भक्ति में लीन रहने के कारण तथा प्रथम आठ गुरुओं के आशीर्वाद के कारण अध्यात्मिक शक्ति तथा भक्ति भावना को धारण किए हुए अवतरित हुए। उनके नाम स्मरण मात्र से ही प्राणी सत्विक गुण हृदय में एक साथ प्रकाशित हो जाते हैं। उनसे पूर्व प्रथम पांच गुरुओं की वाणियां उपस्थित थीं। गुरु तेग बहादुर जी ने निरन्तर उन वाणियों का संक्षिप्त एंव सरल रूप विशुद्ध ब्रज-भाषा में प्रस्तुत किया। उनके शब्द एंव श्लोक अत्यन्त सरल हैं। अन्य गुरुओं के समान ही उनकी वाणी में अनुभूति पक्ष की प्रबलता है तथा भक्तिकालीन सन्तों के समान अभिव्यक्ति में स्पष्टता है। यह अलग बात है कि उनके समय में परिस्थितियां बदल गई थीं और उनका जीवन संघर्ष के मार्ग से गुजर रहा था। गुरु जी ने अपने जीवन को सामाजिक अन्याय के समक्ष बलिदान हेतु

प्रस्तुत किया। उच्चवर्गीय लोगों की उप्रोड़न की नीति को उन्होंने अपने आचरण के माध्यम से नकारा था। वे सामाजिक समानता के प्रबल समर्थक और पक्षधर थे। प्रत्येक मानव को स्वेच्छानुसार सामाजिक जीवन व्यतीत करने एंव धर्म के क्षेत्र में इच्छानुसार विश्वासों का अनुसरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

गुरु जी ने अपनी वाणी में अपने जीवन दर्शन को प्ररिक एवं सक्रिय रूप में प्रस्तुत किया है इसके साथ ही उन्होंने सिक्ख-गुरुओं की पारम्परिक विचारधारा तथा उनके दर्शन को भी अग्रसर किया है। गुरुवाणी के आधार पर कह सकते हैं कि मध्यकालीन परिस्थितियों की जकड़न में सिक्ख गुरुओं ने जिस ढंग से नई चेतना और जागरूकता का परिचय दिया है उसे धर्म,समाज एंव दाशनिक चिन्तन के क्षेत्र में नई दृष्टि का नाम दिया जा सकता है। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार सिक्ख गुरुओं ने और कबीर आदि सन्तों ने जिन प्रयत्नों से समाज को एक सूत्र मे पिरोने और भारतीय-संस्कृति के प्रति श्रद्धावान बनाने का प्रयास किया, वह समसामयिक परिस्थितियों की मांग थी।

मध्यकालीन सन्तों, सिक्ख गुरुओं और नवम् गुरु के प्रति विशेष रूप से इस पृष्ठभूमि का अंकन इस लिए किया गया है ताकि उनकी वाणी के आध ार पर उनकी जीवन दृष्टि और मानवतावादी चेतना का सही ज्ञान हो सके, क्योंकि किसी भी कवि की रचना में उसका वयक्तित्व और उसका समाज अथवा परिस्थितियां जीवंत रूप में विद्यमान रहती हैं। गुरु जी की वाणी का बहुमुखी होना और गुरुवाणी का सार तत्त्व उपलब्ध होना उनकी गहन जीवन दृष्टि का परिचायक है, जो उनके जीवन का बहुरंग चित्र प्रस्तुत करती है।

गुरु तेग बहादुर जी का जीवन बलिदान की दृष्टि से भारतवर्ष की बलिदान परम्परा में शीर्षस्थ स्थान का अधिकारी है।

उनका बलिदान भारतवासियों के लिए स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की

रक्षा हेतु प्रेरणा स्रोत है। गुरु जी ने अपने ज्ञान, तप और भक्ति के द्वारा अभय पद को प्राप्त कर लिया था। उनका जीवन संसार के जीवों के कल्याणार्थ था अथवा यूँ कह सकते हैं कि उनका जन्म मानवता की रक्षा के लिए हुआ था। गुरु तेग बहादुर जी से पहले ही मानवता की रक्षा करने के लिए सिक्ख गुरु एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में शस्त्र धारण कर चुके थे। अतः गुरु परम्परा का अनुसरण करते हुए मानवता की घातक राजशक्ति का शस्त्र के बल पर मुकाबला करना गुरु तेग बहादुर जी ने उचित समझा। इतिहास भी साक्षी है कि वे निःस्वार्थ भाव से मानवता की रक्षा के लिए लड़ रहे थे। संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना के विरुद्ध धर्म के सच्चे स्वरूप के पक्ष के समर्थन में उनका शस्त्र न्यायोचित था। शिवा जी और गुरु गोबिन्द सिंह का जीवन भी इसी सिद्धान्त को मान्यता देता है। श्री कृष्ण का अर्जुन को उपदेश भी इसी बात की ओर संकेत करता है। गुरु जी के युग में सन्त की परिभाषा नयें रूप में सामने आई थी। संस्कृत की एक उक्ति के अनुसार इस परिभाषा को जाना जा सकता है कि "सन्तों का हृदय व्रजादडर्ण कठोराणि मृदुनि कुसुमादर्डापि" अर्थात् यदि सन्त हृदय निहित स्वार्थों के प्रति वज्र से भी कठोर है तो मानव पीड़ा के बाण के लिए नवनीत से भी कोमल होता है।

सिक्ख परम्परा के सभी गुरु निर्गुणवादी सन्त हैं। इस परम्परा में कबीर का व्यक्तित्व निर्देश बिन्दु है। कबीर ने अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार खण्डन-मण्डन पद्धति को अपनाया तो सही लेकिन उनका खण्डन पक्ष प्रबल रहा। परिस्थितियों की संवेदना के स्तर पर कबीर न मुस्लमान रहे, न हिन्दू। वे मानवीय हितों के लिए अपना जीवन दाव पर लगा चुक थे। कबीर ने विद्रोह का स्वर मुखरित किया और नवजागरण की भूमिका का उद्‌घाटन किया। सिक्ख गुरुओं की परिस्थितियां कबीर से भिन्न थीं। उन्होंने सिक्ख धर्म की स्थापना पर भी बल दिया। साथ ही आत्म अनुभव को जनजीवन के समक्ष मात्र आर्दश ही नहीं यथार्थ रूप में भी प्रस्तुत किया। गुरुओं का

जीवन इतिहास इस बात की साक्षी है कि प्रत्येक गुरु ने अपनी समसामयिक परिस्थितयों के अनुरूप अपनी जीवन दुष्टि को जनता की सुविधा हेतु धर्म एंव आचरण अथवा नैतिकता के सदंर्भ में प्रस्तुत किया।

गुरु तेग बहादुर जी के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना उनका राजनीति से खुलेआम टक्कर लेना है। क्योंकि शासक में न्याय का अभाव था शासक वर्ग संकीर्रा सम्प्रदायिकता में ग्रस्त होकर मानवता के आदर्श को भूल रहा था। मानव समाज का उद्धार करना महापुरुषों के गुणों का लक्ष्य रहा है। गुरु तेग बहादुर जी का बलिदान मानवता के इतिहास की ऐसी घटना है जो सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी।

गुरु हरगोविन्द जी ने शासक वर्ग के अत्याचारों से रक्षा हेतु मीरी-पीरी की दो तलवारें धारण की थीं। तदोपरान्त गुरु परम्परा में उसे मान्यता दी गई और गुरु तेग बहादुर जी ने भी इसी विचारधारा का अनुसरण करते हुए तलवार को धारण किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को बाण उपहार में दिए और करतारपुर के युद्ध में तलवार (तेग) का चमत्कार दिखाकर अपने पिता हरगोबिन्द से तलवार का बहादुर भाव 'तेग बहादुर' नाम की ख्याति अर्जित की। तत्कालीन सामन्ती राजशाही जातियों में सामाजिक, आर्थिक शोषण की जड़ें बहुत गहरी जा चुकी थीं। साधरण जनता का धर्म सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त था। इन विपरीत परिस्थितियों में गुरु तेग बहादुर जी ने दिशा परिवर्तन के लिए प्ररेति किया। उनका साध्य तो पवित्र गुरुओं का ही था, लेकनि साध ान दूसरा अपनाया गया। फलस्वरूप उनका आत्म बलिदान अन्याय के विरोध ा था। किसी स्वार्थ के प्रति नहीं था उन्होनें जो कुछ भी किया, वह किसी सद्उदेश्य की प्राप्ति के लिए ही था। किसी राजसी सत्ता से टक्कर लेना कोई सहल कार्य नहीं है। सत्ता के पास प्रत्येक सुविधा होती है टक्कर लेने वाले के पास केवल दैवी प्रेरणा और उसका अपना धर्म होता है। ऐसी स्थिति में गुरु तेग बहादुर जी सांसारिक महत्त्वकाक्षां से प्रेरति होकर शक्तिशाली राजा

बनने के लिए प्रयत्नशील नहीं माने जा सकते। धर्म की परिणाति एक सामाजिक प्रक्रिया है लेकिन गुरु तेग़ बहादुर की अवधारण व्यापक है। गुरु जी परदुख कातर सन्त थे। अगर वे गल्त नीतियों का विरोध न करते तो इतिहास उन्हें क्षमा न करता। महापुरुषों ने मानव जीवन को सदा नई दृष्टि प्रदान की है। उन्होंने परिस्थितियों के अनुरूप युग चेतना के अनुसार शब्दों को नया अर्थ दिया है। उन्होंने सन्त को जिस अर्थ में लिया है वह उनकी जागरूक चारित्रिक विशेषता का परिचायक है, जो लोग इस मत से सहमत नहीं है उन्हें गुरु तेग बहादुर की वाणी का सही मुल्याकंन करना चाहिए। उनकी वाणी की मूल प्रेरणा को जानकर ही उनकी जीवन दृष्टि को समझा जा सकता है।उन्होंने गुरुओं के धार्मिक विचारों का उचित अनुसरण किया है। गुरु परम्परा पुरुष को निष्क्रय एवं जगत् को केवल प्रकृति के परवर्ती परिणामों अथवा प्रकृति विकृति वाले सिद्धांत को स्वीकार नहीं करती।"पुरुष" की अवधारणा भारतीय परम्परा के पुरुष सिद्धान्त की ही व्याख्या है। गुरु जी ने भी गुरुमुख सिद्धान्तों का नियमबद्ध पालन करते हुए ईश्वर को आकालपुरख, आगोचर, निरंजन, आजूनि, अलख, निर्भय और निर्वैर माना है।

गुरु तेग बहादुर जी ने भी जीवन की सार्थकता सन्यास की अपेक्षा ग्रहस्थ जीवन में ही सिद्ध की है। भले ही वह संसार को नश्वर और सम्बन्धों को झूठे भी बताते हैं, लेकिन फिर भी संसार में रहने का सिद्धान्त जल में कमल की भांति बताते हैं। उनकी वाणी के आधार पर गुरुमत सिद्धान्तों को अत्यन्त स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है और उनके निजि जीवन में उनका साकार रूप देखा जा सकता है। गुरु जी ने यहां एक ओर आध यात्मिक तत्त्वों का सम्प्रषेणा किया है, वहां साथ ही साथ भौतिक संसार में विचरने एवं शुद्ध आचरण का पालन करने की ओर भी निर्देश दिया है। भक्ति के आभाव में जीव आवागमन के चक्कर में भटकता है। इस से मुक्त होने के लिए गुरु की भक्ति और ज्ञान एक मात्र साधन हैं। गुरु भक्ति से भक्त

नाम स्मरण की ओर प्रवृत्त होता है। अहं का त्याग उसके लिए पहली शर्त है।

"साधो मन का मान त्यागो" अहं का नाश होने से मनुष्य सत्‌रूप हो जाता है और वह संसार को मिथ्या जानने लगता है। गुरु तेग बहादुर जी मानव जीवन को निकटता से जान चुके थे और वह उस के उद्धार का उपाय भी जान चुके थे कि-"जो दीसे वे सगल बिनासे ज्यों बादर की छाई"।

तब शरीर से मोह कैसा। इतना सब जान लेने पर भी क्या लोकमंगल के आर्दश को त्यागकर कोई व्यक्ति भयतीत होकर अथवा लोभवश होकर उसकी शरण स्वीकार करेगा। अगर यही होता तो गुरु तेग बहादुर जी अपने निस्वार्थ त्याग और बलिदान के कारण आज हमारी आस्था और श्रद्धा के पात्र न होते गुरु तेग बहादुर जी कोरे ज्ञानी गुरु नहीं थे। वे मन्दिर, मस्जिद में बैठकर उपदेश करने वाले अथवा कीर्तन करने वाले नहीं थे। वे सच्चे कर्मयोगी जनहितकारी संन्यासी ईश्वर के अनन्य आस्थावान भक्त और भक्ति मार्ग के सच्चे व्याख्यता थे। वे सुकरात, ईसा, राम, कृष्ण और बुद्ध की भांति अपने हितों से ऊपर मानव हितों के पक्षधर और तदर्थ जीवन की बाजी लगा देने वाले महापुरुष थे।

गुरु तेग बहादुर जी की वाणी का सम्यक उध्ययन करने पर उनके जीवन के अनेक पक्ष उद्‌घाटित होते हैं, जिनके आधार पर उन्हें सन्त, भक्त, वैरागी, धार्मिक नेता, महान् बलिदानी, त्यागी, परोपकारी और वीर सेनानी न जाने क्या-क्या कहा जा सकता है। प्रत्येक क्षेत्र में वे पूर्ण अधि ाकारी है। उनका गृहस्थ जीवन संसार से पूर्णतः जुड़ा हुआ है। लेकिन अपने जीवन लक्ष्य से वे कभी विमुख नहीं हुए। उनका जीवन दर्शन, गुरुमत सिद्धान्त और उनके जीवन की सक्रिय जीवन दृष्टि नवचेतना का परिचायक है। उन्होंने मानवता की रक्षा के लिए अपना सिर देने में तनिक भी हिचकिचाहत नहीं

की। उनका प्रेरक जीवन अनेक पक्षों को छूता हुआ मानवव समाज के हितों की पूर्ति करके ध्रुव के समान अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। उनकी वाणी उनके जीवन को सक्रिय और चेतनापरक सिद्ध करने में सक्षम है। उनका जीवन उनके अनुभवों का परिणाम है, जो वास्तविकता की नींव पर खड़ा है। उनकी वाणी की विशिष्टा है कि बार-बार पढ़ने से उनके व्यक्तित्व का नया पक्ष अद्‌घाटित होता है। जिन विद्वानों ने उनकी वाणी का अध्ययन,चिन्तन और मनन करके उसे समझने का प्रयास किया है, वे ही उनकी सक्रिय जीवन दृष्टि को जान सकते है।

अत: कहा जा सकता है कि गुरु तेग बहादुर की वाणी की विचार-धारा उनके विल्क्षण व्यकितत्व की द्योतक है।

वाणी गुरु तेग बहादुर: दार्शनिक पक्ष

गुरु तेग बहादुर गरुमत सिद्धान्तों के पक्षधर एवं भारतीय परम्परा की आध्यात्मिक विचारधारा के महान संत थे। उन्होंने अपनी वाणी में सामाजिक, आध्यात्मिक एवं दाशनिक दृष्टिकोण अपनाये, उन्होंने अनेक वेदों, पुराणों तथा अन्य धर्मों के प्रसिद्ध ग्रन्थों का भी अध्ययन किया और संस्कारवश उन्हीं के आधार पर ईश्वर को जानने की चेष्टा की। उन्होंने अन्य सिक्ख गुरुओं के समान ही ईश्वर के स्वरूप को अत्यन्त सरलतम ढंग से जानने का सरलतम मार्ग बताया है और निजी अनुभव के बल पर जनता का मार्ग दर्शन किया है।

किसी भी समुदाय अथवा धर्मिक दृष्टिकोण को अपनाकर चलने वाला कोई भी कवि अपनी रचना को दार्शनिक तत्त्वों से बचा नहीं सकता। मध्यकाल का सपूर्ण साहित्येतिहास इस बात का साक्षी है, क्योंकि गुरुओं, पीरों, संतों और आचार्यों के जीवन का लक्ष्ण उस चरम तत्त्व की प्राप्ति होती है। इसके लिए वे अपना सारा जीवन उसी की खोज में लगा देते है और दूसरों को मार्ग दर्शाते हैं। यही मार्गदर्शन आगे चलकर उनके काव्य का जीवन दर्शन बन जाता है। उस परम तत्त्व की चर्चा अथवा विवेचना भले ही सामर्थ्य से बाहर हो तो भी उसके लिए किया गया प्रयत्न इसका वर्णन तत्त्व मीमासा के अन्तर्गत होता है।

गुरु तेग बहादुर जी आध्यात्मिक परम्परा के उन आचार्यों में से हैं जिन्होंने दार्शनिकता को आध्यात्मिक रंग में रंग कर साधरण जन तक पहुंचाने का यत्न किया है। उन्होंने अपने साहित्य में तत्त्व मीमांसा से सम्बन्धित ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष आदि विषयों पर यथा स्थान चर्चा की है और अपने ही ढंग से सरल वाणी के आधार पर इन तत्त्वों का निरूपण इस प्रकार किया है:-

1. ब्रह्म तत्त्व :- गुरु तेग जी बहादुर अपनी वाणी में यद्यपि सगुण

ब्राह्मवाद की शब्दावली का प्रयोग करते हैं। तो भी उन्होंने निर्गुणवादी परम्परा के सिद्धान्तों का वर्णन ही किया है। इतना होने पर भी वे ईश्वर के निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपों को स्वीकार करते हैं। वे ईश्वर को व्यापक अगम और अगोचर मानते हैं। उनके अनुसार वह मूल सत्ता या विश्व का आधारभूत तत्त्व सब प्राणियों के हृदय में निवास करने वाला है। वह हमारे मन रूपी दर्पण में अपने आपको प्रतिबिम्बित करता है अत: उसे प्राप्त करने के लिए या जानने के लिए वन में जाकर खोजने की कोई आवश्यकता नहीं।

काहे रे बन खोजन जाई,

सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई।

गुरु जी के अनुसार ईश्वर मानव के हृदय में निवास करता है और इसका रहस्य भक्ति द्वारा पाया जा सकता है। यही विश्वास और श्रद्धा का मार्ग है जो अन्तर बोध द्वारा आध्यात्मिक प्राप्ति की सम्भावना बताता है। सांसारिक जीवन के दुखों-सुखों में निर्लेपता और संतुलन का अभ्यास इस दिशा की ओर प्रगति की नैतिक शर्त है। ईश्वर के विषय में गुरु तेग बहादुर जी ने जो कुछ भी लिखा है इसके विषय में कहा जा सकता है कि निर्गुण का अर्थ आप अविज्ञेय नहीं लेते अपितु रूप, रंग, आकार,आदि से रहित अर्थ है। इसी प्रकार वे सगुण का अर्थ मूर्ति आदि न लेकर सारे अच्छे गुणों को स्वीकार करते हैं।

2. जीव :– गुरु तेग बहादुर जी की वाणी में जीव के विषय में स्पष्टतय: कुछ नहीं मिलता लेकिन अनेक स्थानों पर मनुष्य जन्म के बारे में चर्चा की गई है उनके अनुसार !

मानस जन्म अमोलक पाइओ।

तभा दुरलभ देह पाइ मानस की,

दो मूल सत्य हैं। गुरु तेग बहादुर जी के अनुसार मनुष्य इस दुर्लभ जीवन को पाकर भी अपना भविष्य संवार नहीं सकता है क्योंकि वह 'गाफ़िल' और 'बावरा' होकर सो रहा है उसने 'मिथ्या तनु साचो कर मानयो' और

इसे यह भी नहीं मालूम कि 'छिन छिन अउध बिहातु है' इसी कारण वह भटक रहा है और अपना समय व्यर्थ गंवा रहा है।

उन्होंने अपनी वाणी में एक आदेश मनुष्य की कल्पना की है जिसे उन्होंने श्रेष्ठ आत्मा माना है वेदों और उपनिषदों के अनुसार जीव और ब्रह्म स्वरूप से एक ही हैं। माया के कारण भिन्न हैं। जीव का सम्बन्ध जब माया या अविद्या से हट जाता है और जीव अपने स्वरूप में ही ब्रह्मत्व को प्रत्यक्ष करता है तो दोनों में अभिन्नता का बोध हो जाता है। कहा भी है "नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ जिउ पानी संगि पानी"

जीव को इस अवस्था को पाने हेतु आदर्श मनुष्य बनना जरूरी हैं जिसे इन्होंने "साधो" या "रे मन" से सम्बोधित किया है। इन्होंने कहा है कि जो मनुष्य गीता के ब्रह्मज्ञानी के समान सन्तुलित अवस्था को पा लेता है वही साधु अथवा आदर्श मनुष्य है।

जो नर दुख में दुख नहि माने
सुख सनेह अरु भै नहि जा के
कंचन माटी मानें।
आसा मनसा सगल त्यागे , जग ते रहे निरासा
काम क्रोध जिह परसे नाहिन,
तिह घटि ब्रह्म निवास।

गुरु जी के अनुसार इस संतुलनमय स्थिति को ही आदर्श मनुष्य या महापुरुष कहा गया है। लेकिन विडम्बना यह है कि मनुष्य इस झूठे संसार को सच्चा मानता हैं और ईश्वर को भूल जाता है। वह इस संसार में अपने आपको खो देता है और अपने लक्ष्य को भूल जाता है। गुरु जी की वाणी में मनुष्य को बार-बार सचेत किया गया हैं।

4. माया :- जीव और ब्रह्म के भेद का कारण पांच विकारों को माना जाता है। गुरु तेग़ बहादुर जी की वाणी में माया शब्द बहुधा धन, सम्पत्ति

आदि के लिए प्रयुक्त हुआ है। माया ने सारे संसार को मोहित किया हुआ है। इसी कारण मनुष्य ब्रह्म के पद की प्राप्ति के लिए यत्न नहीं करता। माया मनुष्य को अपने मन से अन्धा बना देती है। इसलिए वह हरि या नारायण के चिन्तन से भी विमुख हो जाता है।

"अउर सगल जगु माइआ मोहिओ निरभै पद नही पावै।

कोई विरला मनुष्य ही ऐसा होता है जो माया के आवरण को हटा कर अपने चित्त को ब्रह्म में लीन करके अपने जीवन को सफल बनाता है। अज्ञानियों का मन माया में रमण करता है और वे इस माया के जाल में इस प्रकार फंस जाते हैं जैसे दीवार पर बने चित्र में आकृतियां। गुरु जी ने माया को एक मद कहा है जो मनुष्य को भ्रम में भटकाता है और इसे ईश्वर से विमुख रखता है। उसमें इसका सारा जीवन व्यर्थ नष्ट हो जाता है।

"माइआ को मदु कहा करतु है संगि न काहु जाई"

निसि दिन माइआ कारने प्रानी डोलत नीत

कोटन मै नानक कोअ नाराइन जिह चीत"

गुरु जी की वाणी में माया शब्द का प्रयोग बहुधा लौकिक आकर्षण, बाहरी सौन्दर्य और आर्थिक बन्धन के लिए हुआ है। इनके अनुसार माया का यह सब मोहक रूप है। परन्तु वे माया के दूसरे रूपों को भी स्वीकार करते हैं जिनके अनुसार सारा विश्व ही माया का कार्य है या माया का विस्तार है और वह माया ईश्वर के अधीन रहने वाली है अतः मनुष्य को माया से विमुख होकर ईश्वर का स्मरण करना चाहिएं। गुरु जी ने अपनी वाणी में इसकी पुष्टि भी की है।

"अपनी माया आपि पसारी आपहि देखन हारा

सिमरन नहि किउ मुरारि माइआ जा की चेरी।

गुरु तेग बहादुर जी ने सम्पूर्ण सृष्टि को नश्वर कहा है यहां तक कि सभी निकट सम्बन्धी और रिश्ते-नाते भी हैं। इन्होंने सभी वस्तुओं को

संसार की तृष्णाओं से जोड़ कर सपना मात्र कहा है और "ज्यों सपना रैनाई" "मृगतृसना जिउ इहु जगु" कहा हैं।

5. मोक्ष :- गुरु तेग बहादुर जी ने मानव जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष माना है। इसे उन्होंने अभय पद की संज्ञा से भी अभिहित किया है। गुरु जी ने मोक्ष की सभी अवस्थाओं के साथ-साथ मोक्ष के साधनों (विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति एंव विमुक्षत्व) आदि का भी विवेचन किया है। मोक्ष की अवस्था मानव जीवन की सफलता की आध्यात्मिक विचारधारा के अनुसार चरमोत्कर्ष की अवस्था है। मोक्ष की विभिन्न अवस्थाओं में मनुष्य ब्रह्मज्ञानी का स्वरूप धारण करके और निर्लेप होकर ईश्वर का स्मरण करता है तभी वह निर्भय पद अथवा मोक्ष का अधिकारी बन पाता है। गुरु जी की वाणी के अनुसार

"जिह माया ममता तजी सब ते भयो उदासे
तभा कउन नामु गुर जाकै सिमरै भइ सगरु कह तरई
कलि महि एकु नाम किरपानिधि जाहि जपे गति पावे

जो मनुष्य नाम का स्मरण करता है उसका अहं भाव नष्ट हो जाता है और उसे निर्भय पद की प्राप्ति होती है वही मनुष्य की वास्तविकता को "अचल अमर निरभय मद पाओ, जगत जाहि हैरानी" प्राप्त करता है और महापुरुष कहलाता है। यह तभी हो पाता है जो स्तुति और निन्दा को, हर्ष और शोक को, स्वर्ग और नरक को, विष और अमृत को, वैरी और मित्र को समान जानता है। गुरु जी के शब्दों में वही मानव मोक्ष का अधिकारी है अथवा यूं कहना चाहिए कि वही मनुष्य मोक्ष की स्थिति को पा लेता है।

"उसतति निंदिआ नाहि जिहि कंचन लोह समान
कहु नानक सुनु रे मना मुकति ताहि तै जानि
हरख सोग जाकै नही बैरी मीत समान
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि ने जानि

मोक्ष के विषय में गुरु जी का निजी दृष्टि-कोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। उन्होंने मोक्ष में चित्त की चंचलता, सांसारिक वस्तुओं से मोह, भय, चिन्ता, तृष्णा झूठे नाते आदि को मोक्ष में बाधक माना है। इनका कथन है मन की चंचलता अज्ञानता.को पैदा करती है और माया में लिप्त करती है। गुरु और नामस्मरण से विमुख करती है और निर्भय पद की प्राप्ति में बाधक सिद्ध होती है। ज्ञान की प्राप्ति हेतु अथवा निर्भयता की प्राप्ति हेतु इन्होंने मानव जीवन के लौकिक पक्ष को अधिक महत्त्व दिया है।

भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि

कहु नानक सुन रे मना गिआनी ताहि नर मानि

गुरु जी का अभिप्राय यह है कि निर्भय होने से मनुष्य संसार की मिथ्याशक्तियों से भयभीत नहीं होता है। उसी के फलस्वरूप वह उस परमतत्त्व को पाने में सफल हो जाता है। मन की दृढ़ता और ईश्वर स्मरण उसके सहायक तत्त्व होते हैं। जिससे मानव परम पद, निर्भय अथवा मोक्ष की अवस्था तक पहुंच जाता है।

गुरु जी की सम्पूर्ण वाणी का दार्शनिक विवेचन करने पर विदित होता है कि आप की वाणी में भारतीय-संस्कृति के अनुरूप वेदों, अनिषदों ,पुराणों तथा मध्यकालीन सन्तों और गुरुओं के समान ही भारतीय दर्शन और तत्त्व मीमांसात्मक सिद्धान्तों का वर्णन प्राप्त होता है। गुरु तेग बहादुर जी की वाणी में ईश्वर सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों में विद्यमान है। ब्रह्म अथवा ईश्वर, जीव जगत, माया और मोक्ष से सम्बन्धित विषयों पर निष्पक्ष रूप से प्रकाश डाला है। इनका दर्शन सिक्ख गुरु परम्परा की एक कड़ी के रूप में काम करता है, जिसमें अन्य गुरुओं के समान ही भक्तों और सन्तों तथा महापुरुषों का मार्ग दर्शन किया गया है। इनकी वाणी में भक्ति तत्त्व की प्रधनता है, जिसमें सर्वप्रथम मन की चंचलता का विरोध किया गया।

हम देखते-हैं कि गुरु जी ने स्थान-स्थान पर मन की प्रबलता और

चंचलता का चित्रण कर के उसे संसार की नश्वरता दिखाकर उसें वैराग्य भाव भरकर साधु संगति, गुरु भक्ति एवं परमात्म स्मरण के लिए प्रेरित किया है। परमात्मा की प्राप्ति ही शाश्वत अभय पद है। इसकी प्राप्ति से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है।

गुरु तेग बहादुर जी का दर्शन ज्ञान मिश्रित भक्ति योग में अपनी आध्यामिकता चिन्तन धारा को धारण किए हुए निरन्तर प्रवहनशील है जिसमें विरति, विवेक और चिन्तन को विशेष महत्त्व दिया गया है। उनके दार्शनिक चिन्तन में भारतीय दर्शन के सिद्धान्त सजीव रूप में विद्यामान रहते हैं। उनकी दार्शनिक विचारधारा सिक्ख दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत करती हुई मानव जीवन का निरन्तर मार्ग दर्शन करती है।

श्री गुरु तेग़ बहादुर : सांस्कृतिक दृष्टि

मानव के जन्म से ही उसके विकास की कथा आरम्भ होती है। ज्यों-ज्यों उसके संस्कार उभरते और परिवर्तित होते हैं, त्यों-त्यों उसमें मानवीय तत्त्व बढ़ते चले जाते हैं। दूसरे शब्दों में अगर यह कह लिया जाए कि मनुष्य में मानवीय तत्त्व उभारने का श्रेय संस्कृति को है तो अत्युक्ति न होगी। युगों से चली आ रही मानव की उत्कृष्ट साधनाओं की उपलब्धि ही संस्कृति है। मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू जहां अनेकानेक वस्तुओं का अनुसंधान और निर्माण किया, वहाँ अपने आन्तिरक गुणों को विकसित करने का भी प्रयत्न किया तदनन्तर उसने अपने को सुसंस्कृतक बनाने के लिए सामाजिक मर्यादाओं और बन्धनों में बांधा। ज्यों-ज्यों मानव में आन्तिरक गुण विकसित होते गए इसकी सामाजिक भावना प्रबल होती गई और उसकी चेतना अधिकाधिक सुसंस्कृत ! मानव का विकास उसके समाज उसकी सभ्यता और उसकी संस्कृति का ही विकास है। यह विकास कोई करिश्मा नहीं है अपितु क्रमिक विकास है। संस्कार समय पाकर परिवर्तित होते हैं महापुरुषों का अनुसरण व निर्देश उसमें सहायक सिद्ध होते हैं। मानव जीवन को सही दिशा देने के लिए मनुष्य को शिष्ट और सुंसस्कृत होना अनिवार्य है। इसी से उसके आन्तिरक गुणों का विकास होता है और यही मानव की सांस्कृतिक चेतना के विकास के आयाम हैं।

गुरु तेग़ बहादुर सांस्कृतिक चेतना के इन्हीं आयामों को अपने जीवन में धारण करके अवतरित हुए थे। उन्होंने मानव जीवन को नश्वर मानते हुए भी उद्देश्यपूर्ण स्वीकार किया। उन्होंने मानव जीवन का लक्ष्य निर्भय-पद की प्राप्ति माना है। निर्भय पद की प्राप्ति तभी हो सकती है जब जीव ईश्वर का स्मरण करे। उन्होंने जीव को बारम्बार सतर्क करते हुए कहा है कि मात्र भौतिक लिप्साओं की- पूर्ति में ही समपूर्ण जीवन को नष्ट न करो। काल जो कि शाश्वत है क्षण भर में ही तुम्हें समाप्त कर देगा। अतः वास्तविक जीवन उद्देश्य के प्रति सजग रहो, उन्होंने अपनी वाणी में कहा है

प्रानी नाराइन सुधि लेहु

छिन छिन अउध घटै निस बासुर ब्रिथा जातु है देह"

गुरु जी नर को नारायण की पदवी तक ले जाना चाहते थे। इसलिए उनका भौतिक जीवन एवं उनकी गरिमा के महत्त्वपूर्ण कार्य, उनकी सम्पूर्ण वाणी और उसके माध्यम से दिया गया सन्देश इसी बात का परिचायक है। वे आजीवन मन, वचन और कर्म तीनों ही प्रकार से एकान्तनिष्ठ होकर ' नारायण पथ' के पथिक बने रहे किसी वस्तु की अनुपलब्धि की प्रतिक्रिया में रचनात्मक होना जहां भारतीय संस्कृति का एक मुख्य सूत्र है वहां अपने अर्न्तमन को विस्तरित एवं सशक्त करके अपने को और अच्छा उपयोगी एवं अधिकारी बनाना भी इसी संस्कृति का दूसरा मुख्य पहलू है। गुरु तेग़ बहादुर जी ने अपने पिता गुरु हरगोबिन्द से गुरु गद्दी न पाने का न तो विरोध किया और न उसके प्रति ही उदासीनता दिखाई। ऐसी अवस्था में गुरु ने संस्कृति के उक्त दोनों तत्त्वो का मणिकंचन संयोग कर उनका सफल आश्रय लिया। बाबा बकाला में आध्यात्मिक पथ के इस पथिक ने बल, लौकिक, समृद्धि, सुख-सुविधा, पद एवं यश की लिप्सा के प्रति निर्लेप भाव तथां त्याग को ही जीवन का महिमामय अवसर बनाया। इसलिए उन्होंने मानव को गीता के ' स्थितप्रज्ञ' के समान जीवन बनाने का सन्देश दिया। 'सुख दुखे समे कृत्ना लामालाम जयाजयो'' गुरु जी ने भी अपनी वाणी में भी स्थितप्रज्ञ' तथा 'सुखमनी' के 'ब्रह्म-ज्ञानी' का लक्ष्य इस प्रकार बताया है।

'सुख दुख दोनों समकर जाने अउर मानु अपमाना

हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना

इस अवस्था की प्राप्ति के लिए मानव को निर्मोही, त्यागी तथा सत्कर्मी होना अनिवार्य है। यह तभी हो सकता है जब मनुष्य का आन्तिरक पक्ष प्रबल हो। वह आध्यात्मिक दृष्टि से आत्म उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो इसके लिए भक्ति और साधना का मार्ग अपनाना पड़ता है। क्योंकि इसी से उस

परम सत्ता की अनुभूति होती है और यही मुक्ति का कारण है इसे न अपनाने वाले को गुरु जी मूढ़ कहते हैं लेकिन भक्ति किसी विरले को ही प्राप्त है, जो गुरु की कृपा का पात्र होता है। गुरु जी की कृपा उस पर होती है जिस पर ईश्वर प्रसन्न होता है। इतना तो स्पष्ट है कि भक्ति अथवा ईश स्मरण आत्म अनुभव की बात है और गूंगे के गुड़ के समान है

आतमा अनुभव ज्ञान की जो काई पूछे बात।

सो गूंगा गुड खाइ के कहे कौन मुख स्वाद

अत: यही कहना उचित है कि भक्ति मनुष्य के अन्दर की वस्तु है बाहर की नहीं। भक्ति का सबसे सशक्त साधन है नाम। नाम का स्मरण भक्ति अथवा मुक्ति का अमोघ शस्त्र है लेकिन नाम के रहस्य को जानने वाला या बताने वाला अगर कोई है तो वह है गुरु। नाम अथवा गुरु के अभाव में ही मनुष्य दु:खों में पड़ा रहता है।

'हरि के नाम बिना दुख पावै

भक्ति बिना संहसा नह चूके गुरु इह भेद बतावै

अनन्य भाव से साधना रत होने पर ही जीव ईश्वर की अनुभूति अपने अन्तर में करना आरम्भ कर देता है और साहस के प्रति अपने जीवन की सम्पूर्ण साधना समर्पित कर देता है। वही व्यक्ति अपने को अधिक चेतन पाता है क्योंकि अन्तर में उस शक्ति के होने से उसके गुणों का विकास होता है जो उसके चेतन होने का प्रभाव है तथा वह अपने उस आन्तिरक आलोक से बाह्य दृश्यमान जगत को भी आलोकित करता है।

गुरु तेग बहादुर जी भी सांस्कृतिक चेतना के इस आयाम को अपने जीवन में धारण कर चुके थे उनकी सम्पूर्ण वाणी में मानव के आन्तरिक पक्ष को ही अधिक निर्देश दिए गए। उनकी वाणी में उनकी धारणा स्पष्ट है कि ब्रह्म अन्तर में ही विद्यमान है जिसे अपने में अन्तर्निहित इस गरिमा का बोध हो जाता है। वह दिव्य पुरुष हो जाता है इसलिए उन्होंने जंगलों में भटकने वालों को सतर्क करते हुए कहा

काहे रे मन खोजन जाई

सख निवासी सदा अलेपा तोहि संगि समाई

बाहरि भीतरि एको जानहु इह गुरु गिआनु बताई

जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।''

गुरु तेग़ बहादुर जी ने सांस्कृतिक चेतना के विकास में अलौकिक सत्य को ही जीवन में अवरित किया है जो व्यक्ति धर्म के प्रति सत्यमिष्ठ नहीं गुरु जी ने उनसे बच कर चलने का उपदेश दिया है। उन्होंने दिखावा नहीं किया अन्य भक्तों के समान मन्दिरों, मस्जिदों में नहीं भटके। वैभव और ऐश्वर्य को ठुकरा कर जीवनगत सत्य को धारण किया उन्होंने अपने जीवन को प्रत्येक मोड़ पर सत्य की शक्ति से द्विगुणित किया और मन, कर्म, वचन से सत्य का प्रचार किया अनकी दृष्टि में सत्य को छोड़कर झूठ का आश्रय लेने वाले का जन्म व्यर्थ है।

'साथ छोड़ि के झूठ भगिओ जनमु अकारथु 'खोइये

उन्होंने निरछल तप, सत साधना और सत्य के बल पर सद्गुणों का विकास किया। इसी से उन्होंने अपने गुरुत्व की गरिमा को विकसित किया। सदाचार के माध्यम से अपने मानस दर्पण को साफ किया तथा अर्न्तमन की पुकार सुनने में उन्हें देर न लगी संसार की असारता और देह की नश्वरता को गुरु जी ने मात्र साधन स्वीकार किया। सम्बन्धियों के प्रति मोह ममता क्षणिक है। ऐसा आपका विचार है-

'जो तनु तै अपनो करि मानिओ

अरू सुन्दर ग्रिह नारी।

इनमें कछु तेरे नाहिन देखो सोच विचारी''

संसार में असारता और देह की नश्वरता की पुष्टि हेतु उन्होंने अपने मन को अनेक बार समझाया कि तू अपनी चंचलता छोड़ दे। लेकिन ऐसा

तब तक नहीं हो सकता जब तक मन में इच्छाएं उपलब्ध हैं। विषय विकार अग्नि में घी का काम करते है और इच्छाएं बढ़ती चली जाती हैं तथा मन की चंचलता उसे स्थिर नहीं होने देती। एक इच्छा से अनेक इच्छाएं जन्म लेती हैं तब पांचों विकार मानव को कुमार्गगामी बनाते हैं तब विवेक का क्षय होता है और अहंकार का उदय। गुरु जी ने संसार को मृगतृष्णा बता कर इससे विमुख होने का सन्देश दिया है अहं को त्यागने और मानसिक दृष्टि से दृढ़ होने पर बल दिया है-

'साधो मन का मान तिआगउ

मान क्रोध संगति दुरजन की ताते अहिनिस भागउ

इसलिए गुरु जी ने व्यक्तिगत जीवन में धर्म और कर्म को प्रमुख स्थान दिया तथा मोह और तृष्णा को छोड़ा। उनके जीवन में बलिदान की कहानी से बढ़कर उसका और अच्छा प्रमाण क्या हो सकता है? सांसारिक मोह का मूल कारण दुर्मुख मन है यदि मानव मन अपनी चंचलता पर संयम कर विवेक जाग्रत कर सके तो वह महापुरुष या महामानव हो जायेगा। लेकिन यहां मन इच्छाओं के आवेग में स्थिर नहीं हो पाता इसके लिए तप और त्याग की आवश्यकता है। गुरु जी ने अपनी विवश्ता दिखाई है

'साधो इहु मन गहिओ न जाई

चंचल त्रिसना संगि बसतु है

याते थिख न रहाई

भाई तनु मेरो बसि नाहि

बिसि वासु त्रिखिअन धावत

किहि विधि रोकउ ताहि''

धैर्य और त्याग दो ऐसे महत्त्वपूर्ण गुण हैं जिनसे आत्म विजय प्राप्त की जा सकती है। इन दोनों गुणों के धारणी गुरु तेग बहादुर जी ने उन्हें अपने जीवन का आभूषण मान कर धारण किया। त्याग व्यक्ति में सेवा भावना

जगाता है और मनुष्य अपने कर्त्तव्यपालन में तत्पर हो जाता है। धैर्य मनुष्य को दृढ़मन बनाता है। संकट झेलने की शक्ति प्रदान करता है। विपत्ति में धैर्य रखना भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण सन्देश है। औरगंजेब द्वारा अपने शिष्य (मतिदास) पर होते अत्याचारों को खुली आंखों देखना धैर्य का ही काम था। गुरु जी तनिक भी विचलित नहीं हुए। जिस सन्तोष और सयंम के सहारे उन्होंने यह आत्म नियन्त्रण और धैर्य विकसित किया था वह अद्‌भुत था इन्हीं गुणों ने उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में भी समभाव बनाये रखने की शक्ति दी। तभी उन्होंने अपने जीवन के समान ही काव्य में इसी समता भाव का बार-बार उल्लेख किया है।

'उसतति निंदा सम जा कै लोभ मोह पुनि हौसा'

इस स्थिति को पाने वाला मनुष्य लौकिक अलौकिक दोनों शक्तियों के भय से मुक्त हो जाता है। देखा जाए जो वास्तव में भय का दूर होना ही मोक्ष की उपलब्धि है। तभी इन्होंने मोक्ष को निर्भय पद बताया है। गुरु जी की निर्भयता का आधार उनकी जीवनगत पवित्रता थी। उनका न केवल व्यक्तिगत, आन्तिरक एंव आध्यतत्मिक जीवन ही पवित्र था अपितु भौतिक, सामाजिक, राजनैतिक जीवन भी पवित्रता के गुणों से सुशोभित था। परिणामस्वरूप उनके जीवन में कर्त्तव्य, धर्म के प्रति दृढ़ता आई और वे विनम्र, शील, और अडिग बने रहे । इसलिए संसार के प्रलोभन और अत्याचार उन्हें विचलित न कर सके गुरु जी ने अपने को भगवद् अर्पण कर दिया था अत: उन्हें आन्तिरक गुणों की शक्ति का बोध था इसलिए उन्होंने मनुष्य को उस ईश्वर की शरण में जाने को कहा है-

'कहि नानक अबि नाहि अनत गाति बिनु हरि की सरनाई'

गुरु जी कर्मण्य जीवन में विश्वास रखते थे। लेकिन फल प्राप्ति के लिए कोई ललक न थी। उन्होंने निष्काम कर्मण्य जीवन को ही अपनाया और गुरुतत्व के दायित्व को भी सुलझे हुए ढंग से निभाया उन्होंने सर्वत्र औचित्य का निर्वाह किया। भले ही के वे मूलत: भक्त थे लेकिन मननशील गुरु जी

के विचार और चिन्तन की रागात्मकता का ऐसा मणिकंचन योग निभाया कि वे आदर्श बलिदानी, सच्चे गुरु, वीर सेनानी और भक्त एवं आदर्श मानव कहलाए। उनके अद्‌भुत बलिदान के कारण उन्हें "हिन्द की चादर" कह कर सम्मानित किया गया।

गुरु जी की आन्तिरक चेतना का अनन्य गुण उनकी उदारता और स्पष्ट वादिता है। उनकी उदारता उनकी सरलता, सादगी आप के आडम्बरहीन जीवन व्यतीत करने में परिलक्षित होती है। उनकी स्पष्टवादिता संदेशात्मक वाणी में तथा शासक वर्ग के प्रति न झुकने में अधिक मुखरित हुई है।

गुरु जी ने अपनी सम्पूर्ण जीवन दृष्टि को अपने अन्दर में उद्‌घटित किया और अपने मन की दृढ़ता के बल पर अपने जीवन को आदर्श बनाया। वह जानते थे कि मानव मन की चंचलता ही सबसे बड़ा दुंगुण है। यही मनुष्य को पथभ्रष्ट करता है। अगर मनुष्य अपने मन को नियंत्रित करे तो वह प्रकृति से विकृति की ओर जाने की बजाये संस्कृति की ओर चलेगा। उन्होंने केवल कहा ही नही कर भी दिखाया है। उन्होंने अगर भक्ति की लगन, तन्मयता, तल्लीनता,एकामुता का तथा युद्ध में शौर्य, शक्ति, साहस, वीरता का और शरणागत के प्रति आत्मीयता, ममता, स्नेह और उदारता का परिचय दिया । तप और साधना से मन को दृढ़ करके उन्होंने जिस सत्य, ईमानदारी, त्याग और सेवा को अर्जित किया था उसे ही निर्भय होकर निष्ठा से निभाया उसी ने उनके जीवन की उज्ज्वल बनाया। वे जीवन की वास्तविकता को जान चुके थे और ईश्वर के रहस्य को पहचान चुके थे। उन्होंने अपने आन्तरिक गुणों से ऐसी शक्ति पैदा कर ली थी जिसने उन्हें धर्मप्रवण महामानव बना दिया था। जिससे उनकी चेतना स्वत: सांस्कृत हो चुकी थी। इसी चेतना को इन्होंने जीवन और वाणी के माध्यम से प्रसारित किया है और इसी चेतना के बल पर वह अनायास ही धर्म की बलि वेदी पर चढ़ कर इस धर्मपरायण देश को अमर सन्देश व आलोक प्रदान कर गए। यही उनकी सांस्कृतिक चेतना का चरम बिन्दु है।

वाणी श्री गुरु तेग़ बहादुर जी : अभय पद

नवम् गुरु श्री गुरु तेग बहादुर जी इतिहास के उन अद्वितीय एंव अप्रतिम व्यक्तित्वों में से एक है जिन्होंने विभिन्न युगों में विश्व को विश्वास, सच्चाई, सहयोग, दृढ़ता एवं साहस को अपनाकर जीवन मार्ग पर चलने की प्ररेणा दी है। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप उन्होंने जिस संघर्ष पथ पर चलकर मानव जीवन के विरुद्ध एवं आदर्श मूल्यों के प्रति निष्ठा और जागरूकता का परिचय दिया उसका उदाहरण मानव इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने तप, त्याग और संयम द्वारा भक्ति और ज्ञान का समन्वय करके समाज का नेतृत्व किया और जीवन यापन में नैतिक मार्ग पर चलने की चेतना एंव रुचि उत्पन्न की।

गुरु जी ने अपने जीवन की मानव धर्म हेतु आहुति देने में तनिक भी संकोच नहीं किया। उनका यह महान बलिदान मानव धर्म की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त की स्थापना हेतु था। किसी बाह्य अथवा आन्तरिक शक्ति के प्रभाव अधीन नहीं। उन्होंने उदारता एवं सहनशीलता द्वारा विश्व व्याप्त भातृभाव हेतु अपने बलिदान का आदर्श प्रस्तुत किया। वह धर्म समस्त मानव जाति के लिए है जिसमें मनुष्य को महत्त्व एवं गौरव का अधिकारी समझने का उपदेश है। उनके इस मानवधर्म का प्रथम आधारभूत सिद्धान्त है "भै काहू के देत नहि, नाहि भै मानति आनि'' उनके इस सिद्धान्त में उनका सामाजिक, ध ार्मिक , आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण स्पष्टत: परिलक्षित होता है। उन्होंने इस सिद्धान्त के आधार पर ही चतुवर्ग के सारभूत सिद्धान्त मोक्ष का विवेचन किया है। उन्होंने मानव जाति में निर्भयता का तत्त्व लाने हेतु मोक्ष को निर्भय पद से अभिहित किया। उनकी वाणी में निर्भय पद भले ही लौकिक अर्थ में हो या अलौकिक अर्थ में मानव जीवन में उसका अत्यन्त महत्त्व है। गुरु तेग बहादुर जी का दर्शन निर्भयता के संकल्प पर आधारित निर्भय व्यक्ति का आदर्श प्रस्तुत करता है और इसके लक्षणों में शूरवीर की निर्भयता के साथ साथ ब्रह्मज्ञानी का सर्वश्रेष्ठ संयम शमिल किया गया है। जो किसी को भी भय न देने का

संयम है'' उन्होंने अपनी वाणी में ज्ञानी और शूरवीर दोनों को निर्भय पद के अधिकारी बनाया गया है। साथ ही साथ निर्भयता के दोनों पक्ष भाव शत्रु और मित्र के सम्बन्धों में समन्वय का विवेचन किया।

गुरु जी मानवता के सच्चे पुजारी थे। वे हर मानव को सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में स्वेच्छा अनुसार विश्वास का अनुसरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। साथ ही वह सामाजिक अन्याय के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने मानवता के दमन को खुलेआम ललकारा था और मानव को धार्मिक रूढ़ियों, आडम्बरों, कट्टरता एंव राजनैतिक उत्पीड़नों से बचाने हेतु एक नया सन्देश दिया था। जो ज्ञानी अथवा महापुरुष की सही व्याख्या प्रस्तुत करने में सार्थक सिद्ध हुआ है। उनके अनुसार

भै काहू को देत नहि नहि भै मानत आनि

कहू नानक सुन रे मना गिआनी ताहि बखानि

अर्थात् मानवता का सच्चा पुजारी न किसी को भय देता है और न किसी के द्वारा दिये गये भय की परवाह ही करता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं हे मेरे मन उसे ही 'ज्ञानी' पुरुष कहना उचित है।

कहने का तात्पर्य यह है कि किसी को भयभीत करना, दोनों ही दिशाओं में मानव की दुर्बलता सिद्ध होती है। भक्ति और ज्ञान द्वारा इसे दूर किया जा सकता है। ईश्वर का स्मरण ही इस दुर्बलता को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। प्रस्तुत श्लोक इसी सिद्धांत की ओर संकेत करता है। इसमें मानसिक और शारीरिक दोनों दुर्बलताओं को भय से दूर रखने का संकेत है, क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से मृत्यु का भय और व्यावहारिक दृष्टि से शत्रु का भय दोनों ही मनुष्य के लिए हानिकारक होते हैं जो मनुष्य अपने सदाचार द्वारा (विनम्रता, सहनशीलता, वचन, मधुर, त्याग) आदि से शत्रु का मन जीत लेता है और गुरु उपदेश द्वारा (गुरुमुख होकर) विषय विकारों से निर्लेप होकर ईश्वर पद मोक्ष अथवा निर्भय पद को पा लेता है, वही वास्तव में गुरु तेग बहादुर जी के शब्दों में 'ज्ञानी पुरुष' है। ज्ञानी का अर्थ है ज्ञानवान् जिसने

इस सृष्टि के रहस्य को जान लिया है। गुरु जी ने मानवतावादी सिद्धान्त को अपने जीवन के व्यावहारिक पक्ष से पूर्णतः जोड़ लिया था। उन्होंने दूसरों की नीति का सत्कार भी किया और स्वयं अपनी नीति पर चलना अपना अधिकार माना। यहां कई बाहरी वर्गों ने उनके अधिकारों में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया। वहां उन्होंने बल प्रयोग को भी उचित समझा। स्वयं किसी को दुत्कारने, गिराने या डराने की बजाए वे सदैव सबके धार्मिक विश्वासों, जीवन सिद्धान्तों और नैतिक विचारधाराओं का आदर करते रहे। इसी जीवन दृष्टि को अपनाकर उन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार किया इसी सिद्धान्त को अपने जीवन दर्शन का मूल मानकर अपनी वाणी में स्पष्ट शब्दों में घोषणा की

भै काहू को देत नहि, नहि भै मानत आनि।

उक्त पंक्ति में गुरु जी का निजी व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। उनका जीवन परिचय इस बात का द्योतक है। इस सिद्धान्त के प्रथम पक्ष में उनका उदार दृष्टिकोण परिलक्षित होता है तो उत्तर पक्ष में उनका स्वाभिमान झलकता है। देखा जाए तो गुरु जी अपनी जीवन दृष्टि को सम्पूर्ण मानवता में बिखेर देना चाहते हैं। उन्होंने आवश्यकता अनुसार बल प्रयोग करने को पाप नहीं माना। उनकी दृष्टि में किसी दूसरे का जुल्म सहना और भयतीत होना पाप करने से भी बड़ा पाप है। उन्होंने सिर झुकाने की अपेक्षा सिर कटाने को श्रेयस्कर समझा। दास का जीवन उनकी दृष्टि में नरक से भी बदतर है। अपने धर्म को छोड़ना ईश्वर के प्रति गुनाहगार होना है। इस लिए बार बार अनकी वाणी में ईश्वर स्मरण द्वारा निर्भय पद की दुहाई दी गई है, जिसे उन्होंने ज्ञान की चरमावस्था कहा है। उनकी दृष्टि में ज्ञानवान व्यक्ति ही निर्भय हो कर और सन्तुलित अवस्था में

प्रतिनिधित्व करता है और निर्भयता के श्रेष्ठतम नैतिक आर्दश की स्थापना करता है।

नवम् गुरु तेग बहादुर जी का जीवन इस बात का प्रबल एंव पुष्ट

प्रमाण है कि वे भयभीत होने और भय दिखाने दोनों को अनैतिक स्वीकार करते रहे। आठवें गुरु के स्वर्गवास हो जाने पर बकाला गांव में जब स्वार्थी तथा भ्रष्ट लोगों ने संसार को पथ भ्रष्ट करने के लिये बाइस झूठी गुरु गद्दिया स्थापित कर ली थी। धीरमल जैसे दुष्ट लोंगो ने गुरु पर घातक आक्रमण तक करवाने का षडयन्त्र रचा था। तब भी गुरु जी निष्चेष्ठ और स्थिर रहे थे। मक्खन शाह के द्वारा धीरमल को दण्डित किये जाने पर भी वह करुणा का उपदेश देते रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि वह न किसी से डरते थे और न किसी को डराना चाहते थे। भयतीत को शरण देना उनके जीवन का प्रथम महत्त्वपूर्ण पहलू था और निडर होकर अन्याय का विरोध करना उनकी प्रकृति थी।

जीवन की गोधूलि में काश्मीर के नवाब के अत्याचारों से आतंकित ब्राह्मणों को गुरु जी ने अभय का दान दिया था।शरणागत की रक्षा के लिए निडरता का इससे पुष्ट प्रमाण क्या हो सकता है कि वह समूचे साम्राज्य के साथ निहत्थे टकरा गये और आतमबलिदान तक दे डाला। वे चाहते तो औरंगजेब के धन, दौलत और ऐश्वर्य को अपना सकते थे लेकिन वे शासक के आंतक से झुकने वाले न थे और न ही अपनी किसी आध्यात्मिक शक्ति के चमत्कार से दूसरे को भयभीत करना चाहते थे। वे मानते थे कि मनुष्य को कोई अधिकार नहीं कि किसी को डराये। उनकी मान्यता थी कि भय से ऊपर उठकर ही हम सबके साथ समान नाता बना सकते हैं और यही मुक्ति का उचित मार्ग है।

हरख सोग जाकै नही बैरी मीत समानि

कहु नानक सनु रे मना मुकति ताहि तै जानि

गुरु जी का जीवन दर्शन इस बात का साक्षी है कि वैर भाव का समूल त्याग कर देने वाला व्यक्ति ही जीवन की सार्थकता को पहचानता है। और प्रेमपथ पर अग्रसर होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो निर्भयता ही यथार्थ बल है। निर्भय होना ही परमात्मा का लक्षण है। गुरु नानक देव जी ने अपने

मूल मंत्र में उस (अकाल पुरुष) को निरभउ और निरवैर कहा है। निरभउ परमात्मा के नामाधार से भय में पनपने वाला जीवात्मा भी निर्भय आचरण करता है। गुरुवाणी के अनुसार

निरभउ होइ भजहु भगवान

साध संगति मिलि कीनो दानु

गुरु जी की पावन दृष्टि में जीवात्मा की निर्भयता नश्वर सृष्टि के प्रति है। वे मानते हैं कि जिस परमात्मा के भय में समूची सृष्टि पनप रही है। उससे विमुखता जीव के अज्ञान और बन्धन का कारण होगी। यही एक ऐसा स्तर है जहां जीव को निर्भय नहीं होना, परमात्मा के भय में रहने से ही मानव निर्भय होता है। लेकिन स्थिति इसके विपरीत है। मनुष्य मात्र सांसारिक भय से भयभीत होता है। ईश्वर के प्रति उसका भयमुक्त होना ही उसका माया में लिप्त होना है।

निरभै होइ न हरि भजे, मन बउरा रे गहिउ न राम जहाज

जो जीव ईश्वर के नाम का स्मरण करते हैं और उसकी शक्ति का भय मानते हैं भाव उसके हुक्म को पहचानते हैं वे उस ईश्वर पद अथवा निर्भय पद के अधिकारी हो जाते हैं । उनके भीतर आत्म प्रकाश और ज्ञान प्रकट होता है। यही उनकी भक्ति का मार्ग है।

जाकै रिदै विसवासु प्रभु आइआ।

ततु गिआन तिसु मनि प्रगटाइआ।।

गुरु तेग बहादुर जी ने निर्भय के इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को अपने जीवन में आक्षरण: उद्घाटित किया और समूची मावन जाति को भी इस पर अमल करने की प्रेरणा दी। गुरु जी के जीवन की अनेक घटनाएं इस बात का प्रमाण हैं। कहते हैं उनकी बंगाल यात्रा के दौरान बंगाल की जादूगरनियों ने गुरु जी को आतंकित करने के लिए अनेक मायावी प्रपंच रचाये, आग और पत्थरों तक की वर्षा की किन्तु स्थिर और निर्भय मन गुरु जी पर

उनकी किसी कपट चाल का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । वे अपने मिशन में भ्रष्ट नहीं हुये। अन्त में मायावी शक्ति उनकी निर्भयता के आगे निर्बल पड़ गई और माया रचाने वाली जादूगरनियां उनके चरणों में आ गिरी। वे चाहते तो अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा मायावी प्रपंचों को मसल देते लेकिन उन्होंने कारुणिक प्रकृति द्वारा उन्हें विजय किया। वे न तो उनसे भयभीत हुये और न ही उन्होंने उन्हें भयभीत किया। उनके जीवन का अन्यतम महत्त्वपूर्ण पक्ष उनका जीवन बलिदान है। उन्होंने अपना शीश देने से पहले जल्लाद से कहा कि मेरा पाठ समाप्त होने से पहले वार मत करना ज्यों ही मेरा पाठ समाप्त हो और मैं निरंकार, सर्वभय भंजन के आगे सिर झुकाऊं तभी मेरी गर्दन पर तुम तलवार का वार करना। बलिदान से पूर्व जब औरंगजेब ने उन्हें अपने दरबार में बुलाया था तब भी उन्हें अनेक प्रकार के लोभ एंव भय दिखाकर अपने उद्देश्य से भटकाने की कोशिश की गई लेकिन गुरु जी ने उनके सभी दावों को ठुकरा दिया था और इस नश्वर शरीर को तिनके के समान त्याग कर ' हिन्द दी चादर' कहलाये।

हिन्दु धरम तरू भूल को राख्यो

तेग बहादुर सतिगुरु त्रिणा समान तन डारि

गुरु जी का जीवन संघर्षमय जीवन था उन्होंने आंधी में जलते दिए के समान अपनी जीवन ज्योति को दूसरों को मार्ग दर्शन देने के लिये बहुत देर तक प्रज्वलित रखा। उन्होंने दलित मानवता का मार्ग प्रशस्त किया। धर्म की रक्षा हेतु उनका दिव्य एंव अद्वितीय बलिदान उनके निर्भीक होने का एक अनुपम उदाहरण है। उन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए मुगल सदैव सजग रहता है। वह किसी भी पाश्विक शक्ति से त्रस्त हुये बिना अपने इष्ट में लीन रहता है। तब निर्भयता ही उसे शक्ति और आत्म तोष उपलब्ध कराती है। वह शक्तिमान होकर दूसरों को अभय दान देता है। वास्तव में देखा जाये तो निर्भय व्यक्ति ही दूसरों को अभय दान दे सकता है। भयभीत व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है।

गुरु जी की सम्पूर्ण वाणी तथा उनके जीवन दर्शन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गुरु जी का जीवन एक आदर्श, तपस्वी, संयमी, त्यागी, वैरागी, सन्त का जीवन था। उन्होंने कथनी तथा करनी को एक करके अपनी महानता का परिचय दिया और करनी समाज को एक नई दिशा दी। मानव समाज उनके बलिदान का ऋणी है और रहेगा। भले ही उनका बलिदान तत्कालीन परिस्थितियों की मांग के अनुरूप था लेकिन उनका निर्भयता का सिद्धान्त जीवन के हर क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु जी व्यक्ति, समुदाय और राष्ट्र सभी स्तरों पर अभय दान देने और निर्भीक रहने के समर्थक थे। वर्तमान युग में उनका यह अमोघ मन्त्र आधुनिक दूषित परिवेश को निर्मल बनाने और जीवनोन में कुछ सुख सुमन खिलाने में अतीव लाभकारी सिद्ध होगा। सबका रामबाण समाधान 'भै काहू को देति नहि नहि भै मानत आनि' में विद्यमान है। साम्राज्य एवं उनके दम्भी शासकों के आगे निपट एवं निरीह ढंग से शस्त्र डाल देने की अपेक्षा प्रतिकाल की भावना से उद्वलित होकर लोहे से लोहा टकराने की क्रूर प्रकृति का परित्याग करते हुये महामानव तेग बहादुर ने जिस प्रकार अपने मस्तक को अलग होने दिया उसे देखकर प्राणी मात्र उनके आगे नतमस्तक हुये बिना नहीं रह सकता । यदि एक दिन भी जीना है तो आन से जिओ । यही है गुरु तेग बहादुर जी का प्रेरणादायक दृढ़ संकल्प । उनकी दृष्टि में अगर सही जीना है तो दुखी और गरीब होकर रहो। नाशवान दुनियां में चेतन होकर रहो तथा लोभ-रहित होकर कर्म करो।

गुरु जी की सम्पूर्ण वाणी में उनकी निर्भयता का संकल्प विशेषत: उभरकर सामने आता है। इसीलिये उन्होंने निर्भयता को आध्यात्मिक रंग देकर उसे जीने उपयोगी बना दिया है। सांसारिक दुखों और कष्टों से मुक्ति हेतु भय निर्भयता सबसे प्रमुख तत्त्व है। अत: प्रभु भजन के लिये गुरु जी की शरण या ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण के लिये भी गुरु जी ने जीव को निर्भय बनने और दूसरों को अभय दान देने की शर्त लगाई है क्योंकि निर्भय चित्त

व्यक्ति ही उत्तरदायित्व को निभाने में सफल हो सकता है।

'गुरु तेग बहादुर जी की वैराग्य भावना'

सिक्ख धर्म की गुरु परम्परा के नवमेश गुरु तेग़ बहादुर भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। उनका बलिदान एवं उनका भक्तिपरक दृष्टिकोण ही उनका परिचय है। उन्होंने अन्य गुरुओं के समान ही सिक्ख धर्म में अपने अनुभवों से नई उद्भावनाओं और सामाजिक अवध ारणाओं को नई दिशा देकर जनता का मार्गदर्शन किया। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप दैवी प्रेरणा का परिणाम समझकर उन्होंने अपने आप का बलिदान देने में भी हिचकिचाहट नहीं की। उनके बलिदान से सिक्ख धर्म नवीन ढंग से अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ। वे सभी प्रकार के पूर्ण सन्त थे। सिक्ख मर्यादा के अनुसार पूर्ण सन्त गुरुमुख और बाह्मज्ञानी थे। उनके समक्ष आदि पांच गुरुओं की वाणियां प्रस्तुत थी। उन्होंने उन वाणियों का अध ययन, चिन्तन और मनन किया तथा उन्हें सरलतम् वाणी में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। उनकी वाणी में सन्तों और सूफियों की भी जटिलता का प्रभाव नहीं है। गुरु तेग बहादुर जी ने सतत् भगवत् चिन्तन करके तपोबल को ग्रहण किया और उस अलौकिक सत्ता को स्वीकार करते हुये लौकिक शक्तियों के आगे झुकने से इन्कार कर दिया।

गुरु नानक देव जी तथा अन्य सिक्ख गुरुओं ने हरि भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ साधना माना है। श्री गुरु तेग बहादुर जी ने हरि भक्ति को "निर्भय पद" प्रदान करने वाली कहा है। उनका मत है कि भक्ति से ही सब संकटों का नाश होता है और परमात्मा के दर्शन होते हैं। उसके समान और कुछ नहीं है। हरि भक्ति के बिना मनुष्य मन के फन्दे में फंसा रहता है और उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है। भक्तिविहीन व्यक्ति को श्वान के समान कहा है। अन्य सिक्ख गुरुओं की भक्ति इनकी भक्ति भी विरक्ति की आंच में भली-भांति संशोधित है। इसीलिये उन्होंने अपनी समस्त रचना में वैराग्य

भावना का विशदता से निरूपण किया है।

सिक्ख मत में वैराग्य का महत्त्व आरम्भ से ही मान्य रहा है। गुरु नानक देव जी बचपन से ही विरक्त स्वभाव के थे। इसी प्रकार नवम् गुरु श्री गुरु तेग बहादुर भी वैराग्य की साक्षात् मूर्ति थे। इसी कारण उन्होंने एक बार माता नानकी तथा अपनी धर्म पत्नी गुजरी को संसार की नश्वरता का संदेश देने के लिये वैराग्य भावना से भरे शब्द लिख भेजे थे।

राम गइओ रावनु गइओ, जाकउ बहु परवार
कहु नानक थिर कछु नहीं, सुपने जिउ संसार ।।५१।।
चिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ
इहु मारगु संसार को नानक थिर नही कोइ।।४२।।

उन्होंने 'बाबा बकाला' में लगभग 20 वर्षों तक अनासक्त भाव से रहे और दृढ़ मन से साधना की। उन्होंने संसार की नश्वरता को और स्वप्नवत् मिथ्या मायाजाल को अच्छी प्रकार समझ लिया था। इसीलिये उन्होंने अपने नश्वर शरीर को तिनके के समान न्यौछावर कर दिया। तेग बहादुर सतगुरु त्रिणा समान तन डारि उनकी वाणी में उनकी 'वैराग्य भावना' यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। संसार की अस्थिरता,शरीर की नश्वरता और ईश्वर भक्ति की प्रेरणा और मन को सान्त्वना उनकी वाणी के प्रमुख गुण हैं। इन्हीं के द्वारा इन्होंने भक्त भक्ति और ईश्वर के लक्षणों का विवेचन भी किया है। गुरु तेग बहादुर जी की आध्यात्मिक चिन्तन-धारा में ज्ञान मिश्रित भक्ति योग की प्रधानता है। उनका भक्ति योग विरति, विवेक और ज्ञान की सुदृढ़ नींव पर निर्मित है। गुरु तेग बहादुर जी ने परम्परा पर आधारित वैराग्य को नहीं अपनाया है। उन्होंने वैराग्य का अर्थ पलायन नहीं लिया है। और न ही उनका अभिप्राय एषणाओं का परित्याग है। उन्होंने वैराग्य को निवृत्ति मार्ग नहीं माना है। वास्तव में विरक्ति आसक्ति का विपरीतार्थक है और इसका अभिप्राय भोगदान का विपरीतार्थक है। लेकिन गुरु तेग बहादुर जी के अनुसार वैराग्य में एषणाओं

से निवृत्ति तो होती है लेकिन साथ ही प्रवृति- मूलक भी है। वैराग्य का अर्थ है इच्छाओं की निवृत्ति और धर्माचरण में प्रवृति। इसी सिद्धान्त को लेकर गुरु तेग बहादुर जी ने अपनी वाणी में वैराग्य का निरूपण बड़ी तन्मयता से किया है। उन्होंने वैराग्य को कर्म क्षेत्र से पलायन न मानते हुये लिखा है।

काहे रे बन खोजन जाई।

रख निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई।

गुरु तेग बहादुर जी के वैराग्य में ही मानव समाज का स्वर निहित है। आत्म-बलिदान और सेवा सिक्ख धर्म के दो आधारभूत तत्त्वों को गुरु जी ने अपने जीवन में पुष्प गंध के समान धारण किया और सतपुरुष को पहचानने की भरपूर कोशिश की। उन्होंने स्पष्ट कहा कि "जगत की रचना मिथ्या है"। इस सत्य का साक्षात्कार करने वाला ही सच्चा ज्ञानी है। संसार के सब पदार्थ, सब सम्बन्ध, सब तृष्णायें, सब इच्छाएं नश्वर है। काम, क्रोध, अंह सब कुछ जल की बूंद की भांति महत्त्वहीन हैं। गुरु साहिब ने संसार की असारता का परिचय इस प्रकार दिया है।

जग रचना सब झूठ है जान लेहु रे मीत

कहु नानक थिरू न रहै जिउं बालू की भीत

तथा " जो दीसे सो सगल बिनासे"

आदि उक्तियों द्वारा उन्होंने सृष्टि का रहस्य खोलकर सामने रख दिया। इसके लिये इन्होंने इस संसार से अनासक्त रहने और अविनाशी तत्त्व की खोज करने में बल दिया है और अत्यन्त सरलतम मार्ग सुझाया है। केवल अपना आप पहचानने से ही अविनाशी और चिरन्तन सत्य रूपी ईश्वर को 'पानी संग पानी' समान प्राप्त किया जा सकता है। इस नश्वर संसार में एक शाश्वत वस्त्र है जो व्यक्ति इस स्थिति को पा लेता है। वह "गीता" का "स्थितप्रज्ञ"और "सुखमनी साहिब" का 'ब्रह्मज्ञानी' हो जाता है। इसे ही गुरु तेग बहादुर ने "निर्भय पद"कहा है। इसके लिये गुरु जी ने एक कसौटी बनाई है।

" जो नर दुख मै दुख नही मानै ।

सुख सनेहु अरु भै नही जाके के कंचन माटी मानै''

गीता में भी भगवान कृष्ण ने ऐसे पुरुष के लक्ष्ण बताये हैं

सुख दुख समै कृत्वा, लाभालाभ जयाजयो

सुख दुख, मान अपमान, लाभ हानि,

जय परालय इस प्रकार के द्धन्द्धात्मक भावों में समान बुद्धि रखनी चाहिए। जो सन्त पुरुष हर्ष, शोक से सर्वथा परे हो चुके हैं उन्होंने संसार के परम तत्त्व को जान लिया है लेकिन यह स्थिति इतनी सरल नहीं है। इसके लिये माया, मोह, अहं आदि विकार बाधक हैं जो मानव को उसके मोक्ष पद से अलग करते हैं और ईश्वर को पाने में बाधक बनते हैं। गुरु जी ने मोक्ष प्राप्ति हेतु मोक्ष की अवस्थाओं को अपनी वाणी में परिलक्षित करके मन की प्रबलता और चंचलता का चित्रण कर उसका मार्ग दर्शन किया है। उन्होंने अपने को सम्बोधन करके उसे बार-बार उपदेश दिये हैं। उसे भय और लोभ द्वारा संसार की नश्वरता दिखाकर उसमें वैराग्य भाव भरकर साधु संगति, गुरु भक्ति एवं ईश्वर स्मरण के लिये प्रेरित किया है। वास्तव में ईश्वर प्राप्ति ही शाश्वत अभय या निर्भय पद है। इसके मिलने पर वह पुरुष न किसी से डरता है न किसी को डराता है इसी अवस्था को गुरु तेग बहादुर जी ने ज्ञान की स्थिति कहा है।

भै काहु कउ देत नहि नहि भै मानत आनि।

कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखानि।।

इसे ही गुरुवाणी में मुक्त अवस्था, बह्मज्ञानी आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। इसे ही भारतीय परम्परा में भक्ति मोक्ष अथवा परमपद कहा गया है। मोहमाया से निवृति एंव धर्माचरण में प्रवत्ति गुरु तेग बहादुर जी के वैराग्य के विशिष्ट लक्षण हैं।

देखा जाये तो यही वैराग्य का वास्तविकता रूप है। वैराग्य वास्तव

में जीवन अथवा संसार से पलायन नहीं है इसका चरम लक्ष्ण एंव आर्दश ईश्वर से तादातम्य स्थापित करना होता है। गुरु नानक जी ने भी इसी प्रकार के वैराग्य को धारण किया था और इसी के महत्त्व का निरूपण किया था। गुरु तेग बहादुर जी ने भी वन में जाकर ईश्वर को खोजने का स्पष्ट शब्दों में खण्डन किया है और इस बात पर बल दिया है कि संसार में कमलवत् अलिप्त भाव से रहना चाहिये और अन्तर में स्थित पाब्रह्मा परमेश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिये।

पुहुप मधि जिउ बासु बसतु है मुकुर माहि जैसे छाई
तैसे ही हरि बसै निरनतर घट ही खोजहु भाई।

ईश्वर मिलन में सबसे बड़ा बाधक 'हउमै' को माना गया है। क्षणिक सुख मानव को माया में लिप्त होने में बाध्य करते हैं। सांसारिक सुखों से निवृत्ति के लिये माया मोह के मिथ्यात्व का अवबोधन कराना पड़ता है। तभी उसके प्रति अनासक्ति होगी और धर्माचरण में प्रवृत्ति बढ़ेगी। धर्माचरण जितना दृढ़ बन जायेगा संसार के प्रति विरक्ति भाव भी उतना दृढ़ होता जायेगा। मिथ्यात्व का ज्ञान होने पर ही उसके प्रति अनासक्ति भाव उत्पन्न होता है। अतः ज्ञान के बिना वैराग्य दृढ़ नहीं होता इसके लिये सबसे बड़ा कारण यह नाना रूपात्मक जगत है जो हमारी अनेक वासनाओं को तुष्ट करता है। अतः सर्वप्रथम इस बात का बोध होना अनिवार्य है कि संसार स्वप्नवत् है और सर्वत्र माया का प्रसार है। केवल ब्रह्म ही पूर्ण है। जीव इस जगत की माया में लिपटा हुआ है। व्यर्थ जीवन नष्ट कर रहा है निःसन्देह इसमें लिप्त रहना उचित नहीं, सत्य तो केवल परमात्मा का नाम है मूर्ख व्यक्ति सत्य को नहीं समझता। इसीलिये उसमें लिप्त रहता है और भटकता है। गुरुमुख इस वास्तविकता को पहचान कर उनसे विरक्त होकर परमात्मा से प्रीति करता है। भव सागर से पार उतरता है और तब वह अनायास ही कह उठता है

"जगत की झूठी देखी प्रीति
अपने ही सुख सिउ सम लागे किआ दारा किआ मीत।"

उसे सभी सम्बन्ध यहां तक कि अपना शरीर भी तुच्छ दिखाई पड़ता है। गुरु जी ने कह दिया है यह शरीर नश्वर है। इससे मोह करना व्यर्थ है। मनुष्य को इस शरीर की सुन्दरता व शक्ति पर गर्व होता है अपने वैभव एवं परिवार पर अभिमान होता है। इसी के कारण वह ईश्वर का स्मरण नहीं करते यहां तक कि धरणी और सम्पत्ति भी यही रह जायेगी। शरीर के छूटने पर कुछ भी साथ नहीं जायेगा। अत: इनसे आसक्ति रखना व्यर्थ है। उनका कहना है

'जो उपजिओ सो बिनसि है परो आजु के काल
नानक हरि गुन गाइले छाहि सकल जंजाल'

तथा

'धनु धरनी अरु सम्पति सगरी जो मानिउ अपनाई
तन छूटे कछु संग न चाले कहा ताहि लपटाई'।

यहां तक कि गुरु जी ने मनुष्य को मृत्यु का भय दिखाकर भी सांसारिक मोह-माया से विरक्त रहने का सन्देश दिया इसी भय से उन्होंने ईश्वर स्मरण को एक महत्त्वपूर्ण साधन बताया है। जिससे उनका यम का त्रास मिटै और भगवत भक्ति में लीन हो प्राणी को ऐसे ही उपाय करना चाहिये। नि:सन्देह वह उपाय वैराग्य ही हो सकता है। भगवान के भजन के बिना यहां स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। सांसारिक प्रलोभनों के प्रति अनासक्ति से ही विमल वैराग्य का उपाय होता है। वह वैराग्य ही सांसारिक विकारों की निवृत्ति और धर्माचरण की प्रवृत्ति का मार्ग है। इस प्रकार के विमल वैराग्य को धारण करने वाला व्यक्ति ही उस नित्य ब्रह्म को पा सकता है। वास्तव में वही सुखी है।

गुरु तेग बहादुर जी की रचना में उनकी वैराग्य भावना के दो ही महत्त्वपूर्ण पक्ष परिलक्षित होते हैं प्रभु महिमा (नाम महिमा) एवं सत्संगति की महिमा का निष्ठा पूर्ण वर्णन और सांसारिक विषयों विकारों माया, मिथ्या

जगत आदि का खण्डन उनकी वैराग्य भावना के महत्त्व को स्पष्ट करने हेतु संसार की नश्वरता एंव मिथ्यात्व तथा मोह, लोभ अंह आदि की निरर्थकता का पुन: अवबोधन कराती है। नि:सन्देह वैराग्य का नया दृष्टिकोण उनकी अनुभूति और उनकी उदार दृष्टि का परिचायक है। उनके लिये वैराग्य निष्क्रियता अथवा पलायन नहीं है और न ही निराशा अथवा उदासहीनता का परिचायक है, वह विशुद्ध धर्माचरण की सतत् प्रेरणा है।

नवमेश- वाणी : प्रासंगिकता

नवमेश गुरु तेग बहादुर जी का युग मानव मूल्यों के ह्रास का युग था। उस समय के शासक ओरंगजेब ने हिन्दू-संस्कृति को समूल नष्ट करने की ठान ली थी। उसने बड़े-बड़े शिक्षा केन्द्रों, मठों और मन्दिरों को नष्ट कर दिया। लाखों निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतार दिया। उस समय के कशमीर के गवनर के अत्याचारों से पीड़ित कुछ ब्राह्मणों ने आनन्दपुर में आकर गुरु जी को अपनी व्यथा सुनाई और रक्षा के लिए अनुनय विनय की। इस घटना ने गुरु जी की आत्मा को झनझोर दिया और गुरु जी बालक गोबिन्द की प्रेरणा से आत्मोत्सर्ग के लिए तत्पर को गए।

गुरु जी नश्वर शरीर के रहस्य को भली-भांति समझते थे। वे आत्मा की अमरता को पहचानते थे। इसीलिए वे निर्भीक थे। वे समत्व भाव से जीवन यापन करेन पर बल देते थे। गीता में भी ऐसे मनुष्य को ही श्रेष्ठ और ईश्वर का प्रिय माना गया है-

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।

अनिकेत:स्थिरमति भक्ति मान्मे प्रियो नर:।। अध्याय १२ श्लोक १९

(अर्थात् जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है, अर्थात् ईश्वर के स्वरूप का निरन्तर मनन करने वाला है। एक जिस किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है वह स्थिर बुद्धिवाला भक्ति-मान पुरुष मेरे को प्रिय है।) श्री गुरु तेग बहादुर जी ने सुख-दुख, निन्दा-स्तुति, लाभ-हानि, मान-अपमान आदि को समदृष्टि से देखते हुये सभी प्राणियों को उस परमात्मा का ही स्वरूप मानने की प्रेरणा दी है।

"उसतुति निन्दा दोउ परहर हरि कीरति उर आनो। जन नानक सभ ही में पूरन एक पुरुष भगवानो

(वाणी गुरु तेग बहादुर महला ९)

गुरु जी जानते थे कि इस संसार में सब कुछ नश्वर है। बड़े-बड़े

राजा महाराजा भी स्थाई रूप से यहां नहीं रह सके। यहां कुछ भी स्थिर नहीं है। यह संसार एक स्वप्न के समान है, जो आंख खुलते (चेतना में आते ही) ही नष्ट हो जाता है।

रामु गइओ रावनु गइओ, जाकां बहु परिवारु
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने जिउ संसारु।।
(वाणी गुरु तेग़ बहादुर श्लोक ५०)

गुरु जी के इस सांसारिक नश्वरता के संकल्प नं ही उन्हें शारीरिक मोह त्याग की ओर प्रेरित किया। उनकी ईश्वरीय निष्ठा , आत्मा की अमरता और देह की नश्वरता ही उन्हें निर्भीक बलिदानी बनाने में सहायक सिद्ध होती है।

" विपदि धैर्यम्''गुरु जी के व्यक्तित्व का अनन्य गुण है। वे मुसीबत में भी अडिग और अविचल रहते थे। दिल्ली में उनकी आँखों के सामने ही भाई दयाला को खौलते तेल की देग में उबाला गया। भाई मतिदास को आरे से कटवाया गया। वे विचलित नहीं हुए बल्कि उनके अन्दर आत्म-बलिदान की भावना और तीव्र हुई। विपत्ति के समय डगमगाने वाले व्यक्ति कभी कोई निर्णय नहीं ले सकते। गुरु जी के मन की प्रबलता को कोई भी भय अथवा लोभ दुर्बल नहीं बना सका। औरंगजेब ने गुरु जी के सामने तीन बाते रखी थीं और गुरु जी को किसी एक को चुनना था। इस घटना इस का उल्लेख गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ में भाई सन्तोख सिंह ने इस प्रकार किया है-

शरामानि के अज़मत दैन
किधौं म्रितु अपनी कर लैन
इन तीनों महि लखहु जु नीकि
हिय के बीचि करूहु सो ठीकि
(गु.प्र. सू. राशि१२ अशु ६४ अंक ४५ पृ ४४६८)

गुरु जी ने न तो इस्लाम धर्म ही स्वीकार किया और न ही कोई करामात दिखाई। उन्होंने इनकी अपेक्षा मृत्यु को श्रेयस्कर समझा और जुल्म

के सामने झुकने से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने सहिष्णुता और धैर्य को अपने जीवन में अलंकार की भांति संजोया।

'विकार हेतो सति विक्रयन्ते येषां प चेतांसि जा एवं धीरा: । (विकार का कारण होने पर भी जिनका मन विचलित नहीं होता वे धीर पुरुष होते है।) गुरु जी ने दूसरे धर्म को अपनाने की अपेक्षा मृत्यु को गले लगाना ही उचित समझा। क्योंकि गुरु जी जानते थे कि अपना धर्म कैसा भी हो कल्याणकारी होता है। जबिक दूसरा धर्म सदैव नाशक होता है। गीता के अनुसार " श्रेयान्स्वध र्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्

स्वधर्मे निधन श्रेय: पर धर्मो भरावह:।।

(अर्थात् मनुष्य अपने धर्म का आचरण करे क्योंकि अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे धर्म गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है। (गीता: अध्याय ३ श्लोक ३५)

गुरु जी ने भययुक्त जीवन को निकृष्ट माना है। उन्होंने मानव को निर्भीक जीवन जीने की प्रेरणा दी है। उनकी वाणी ही नहीं उनका बलिदान भी उनकी निर्भीकता का पुष्ट प्रमाण है। उनकी वाणी में सब को अपने जैसा समझने और अपना बनाने की प्रेरणा है। जब सब को अपनत्व भाव से मनुष्य अपना बना लेगा तो फिर भय किससे होगा और कोई अपने से क्यों डरेगा। डर तो दूसरों से होता है अपनों से तो नहीं। गुरु जी कहते है-

"भै काहू कउ देत नहि
नहि भै मानत आनि
कहु नानक सुनि रे मना
गिआनी ताहि बखानि
(गुरु तेग बहादुर जी श्लोक १६)

न किसी को भयभीत करो और न ही किसी से भयभीत हो। यही ज्ञानवान पुरुष का लक्षण है। मरने के भय से ही मारने का भय उत्पन्न

होता है अगर देह की नश्वरता और आत्मा की अमरता का ज्ञान हो फिर मरने का भय स्वत: नष्ट हो जाता है। आज अस्त्रो-शस्त्रों की दौड़ भी भय का परिणाम है। अपना भय मिटाने के लिए हम दूसरों को भयभीत करते हैं। जो मूलत: गल्त नीति है। गुरु जी ने भय-निवृत्ति का मात्र उपाय बताया है हरि का स्मरण। वास्तव में मोक्ष ही अभय पद है। यही मानव जीवन का चरम लक्षण है। किन्तु इस अभय पद की प्राप्ति भी उसी महान आत्मा को होती है। जिसने आत्म तत्त्व को जान लिया हो। गुरु जी ने सतत् साधना से सृष्टि और स्रष्टा के रहस्य को जान लिया था। वे जानते थे कि

"जो उपजिआ सो बिनसि है परो आजु के काल।''

अत: आपने अभय पद को प्रदान करने वाले उस प्रभु के नाम को अपना लिया था। इसी नाम का आधार लेकर औरंगजेब जैसे अत्याचारी के साथ निहत्थे ही जूझ पड़े । उनके दृढ़ निश्चय के सामने ओरंगजेब का ज़ग़र-जुल्म फीका पड़ गया। वह उन्हें झुका नहीं सका। वह अन्तर्यामी थे। उन्होंने उस प्रभु के 'हुक्म' का साक्षात्कार का लिया था। उन्होंने लोभ- मोह सुख-दुख, हर्ष-विवाद, मान-अपमान से ऊपर उठकर 'अभय पद' पा लिया था। अत: वे मृत्यु से भी भयभीत नहीं हुये। और न ही उन्होंने अपनी शक्ति से औरंगजेब को भयभीत किया। वे चाहते तो उपनी आध्यत्मिक शक्ति से उन्हें कई प्रकार से भयभीत कर सकते थे। मगर गुरु जी का दृष्टिकोण ही अलग था। वे न तो स्ंवय किसी से डरते थे और न ही किसी को डराने में विश्वास रखते थे। वे करामात को शक्ति का दुरुपयोग मानते थे। वे शक्ति का प्रयोग किसी सार्थक कार्य के लिये करना उपयोगी समझते थे। अपनी शक्ति को उन्होंने समूचे राष्ट्र की रक्षा के लिए बलिदान देकर सार्थक किया।

आज के वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में मानव आत्मरक्षा हेतु हिंसावादी हो गया है। भारत जैसे अहिंसावादी देश को भी सुरक्षा के लिये अस्त्र-शस्त्र का संग्रह करना पड़ रहा है। विश्वशान्ति की स्थापना युद्धों के माध्यम से की जा रही है। एक देश दूसरे को धमका रहा है। परमाणु दौड़ निरन्तर बढ़ रही है। सारा विश्व भय और आंतक की लपेट में आ गया है।

वास्तव में देखा जाए तो यह सब मानव की अपनी दुर्बलताओं का ही दुष्परिणाम है। वह अपनी दुर्बलता को छुपाने के लिए दूसरों को भयतीत करना चाहता है। वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके दूसरों को नष्ट कर देना चाहता है।

ताकि उसका विरोध करने वाला कोई न हो। वह अपने ' अहम्' के बूते पर दूसरे के आस्तित्व को मिटा देना चाहता है। मगर वह नहीं जानता कि उसका भी अन्त होना है। मृत्यु तो निश्चित ही है। मानव जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि यह सब देखते हुए भी कि आज तक यहां कोई मृत्यु से बच नहीं पाया, फिर भी दूसरे का विनाश ही चाहता है। जिससे उसे भय होता है उससे बचाव के लिए उसे नष्ट कर देता है। अगर आज पूरा विश्व गुरु जी के बताए हुए मार्ग पर चल कर न किसी से डरे और न ही किसी को डराये, तो विश्वशान्ति का सपना पल भर में साकार हो सकता है। मगर मनुष्य अपने डर को दूर कैसे करे। गुरु जी ने कहा है-

आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहे निरासा
कामु क्रोध जिहि परसे नाहिन तिह घटि ब्रहम निवासा
(सोरठि महला ९ पद ११)

मगर यह काम हरेक मनुष्य के वश का नहीं है। इसके लिए दृढ़ आस्था और निष्ठा की आवश्यकता होती है। मन की चंचलता को नियंत्रित करना पड़ता है।

चंचल मन दहदिस कउ धावत अचल जाहि ठहरानो
(धनारसी महला ९ पद ३)

इसीलिए गुरु जी ने अपनी वाणी में बार-बार प्रभु से प्रीति करने की ओर प्रेरित किया है। यही एक मार्ग है दुर्बलता को दूर कर के शक्ति संगृहीत करने का। जिसके पास शक्ति है वह दूसरों से क्या डरेगा और जो सब प्राणियों में उसी ब्रह्म का स्वरूप देखता है, वह किसी को कैसे डरा सकता है। वह तो उनके आगे नतमस्तक होता है। यही भावना ही मानव को महामानव

बना सकती है।

मृत्युंज्जयी गुरु तेग़ बहादुर जी का समूचा जीवन एक साधक का जीवन है। उन्हें कोई भी लौकिक समृद्धि या आकर्षण साधनपथ से विचलित नहीं कर सका। उनकी वाणी उनके अनुभवों पर आधारित है। वे सांसारिकता के मोहपोश से दूर रहने का सन्देश देते हैं। उनकी कथनी तथा करनी समान है। उन्होंने जो कुछ कहा कर दिखाया। उनका महान व्यक्तित्व मानव जीवन के सभी बाधक तत्त्वों से रहित है। उन्होंने मानव को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद माया आदि विकारो से दूर रह कर एक उस ईश्वर की अराधना पर बल दिया है। वे जानते थे जब तक मोह माया रूपी अज्ञान का अन्धकार मन पर छाया रहेगा तब तक प्रभु के दर्शन नहीं हो सकते। वे कहते है-

'माई मै किहि बिधि लखउ गुसाई
महामोह अगिआनि तिमिर मो मनु रहिओ उरझाई।।
(राग सोरठि महला ९)

मन की शुद्धता से भगत्कृपा सहज ही हो जाती है और मनुष्य उन गुणों को पा लेता है जो मानवता के लिए कल्याणकारी होते हैं। मानव सत्य, प्रेम, करुणा, त्याग, क्षमा, नम्रता और सहनशीलता जैसे गुणो को अपना कर उदात्त हो जाता है। वह सत्य जानने में सक्षम हो जाता है। इतना सक्षम कि किसी के बहकावे में आ ही नहीं सकता। किसी भी प्रकार का लोभ या भय उसे विचलित नहीं कर पाते। वह एक ऐसी अवस्था को पा लेता है जो न तो अपनी स्तुति सुनना चाहता है और न ही किसी की निन्दा करना चाहता है- सुख पाने पर हर्षित नहीं होता और न ही दुःख में शोकाकुल। वह लोहे और सोने को समान समझता है। शत्रु और मित्र को भी समदृष्टि से देखता है। गीता में इसे स्थितप्रज्ञ (स्थित प्रज्ञ) की अवस्थ कहा गया है-

" दु:खष्वनुद्विगन्मना सुखेषु विगतस्पृहः
वीत रागभय क्रोध : भय धीर्मुनिरुच्चते।''

(अर्थात् दु:खों की प्राप्ति में उद्वेग रहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति से दूर हो गई है स्पृहा जिसकी तथा नष्ट हो गए है राग, भय, और क्रोध जिसके, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है।) पंचमेश गुरु अर्जुन देव जी ने "सुखमनी साहिब '' में इसी अवस्था को 'ब्रह्म गिआनी' कह कर लक्षित किया है।

"ब्रह्म गिआनी कै मित्र शत्रु समानि
ब्रह्म गिआनी कै नाहि अभिमान।''

वास्तव में देखा जाए तो मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति जो कुछ भी कहें सांसारिकता से ऊपर उठ कर एक विशेष स्थिति या अवस्था के बाद प्राप्त होती है। जब तक प्राणी इस संसार में रहता है उसे मृत्यु का भय बना रहता है। वह दूसरे शक्तिशाली जीवों से भयभीत होता है कि वे उसको मार देंगे। इस भय कारण उसकी अपनी दुर्बलता है। इस दुर्बलता को छिपाने के लिए ही वह अस्त्र-शस्त्रों का सहारा लेता है। दूसरी ओर शक्तिशाली जीव दूसरों को मारना अपना गौरव समझते है। इसी भावना से हिंसा की प्रवृति बढ़ती है। अगर इस भावना को मन की साधना से नियन्यित्र कर लिया जाए और अपनी शक्ति दूसरों को मारने की अपेक्षा रक्षा के लिए उपयोग में लाया जाए तो पूरा विश्व एक कुटुम्ब की तरह लगेगा। शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पी सकेंगे। जो धन अस्त्र-शस्त्रों के लिए उपव्यय हो रहा है वही निर्धनों के भरण-पोषण के काम आ सकेगा। यह तभी सम्भव है अगर हम श्री गुरु तेग़ बहादुर जी के 'अभय पद' प्राप्ति के मार्ग का निष्ठापूर्ण अनुसरण करें। आज के भटके हुए सन्तप्त हृदयी मानव को गुरु जी का यह अमर सन्देश ही सम्भल प्रदान कर सकता है। आज हिंसा और द्वेष को समाप्त का 'विश्वशान्ति' की स्थापना का यही एक मात्र उपाय है। उनका भय निवृत्ति का यह राम-बाण आज भी उतना ही अचूक है, जितना उनके अपने युग में था।

ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। रागु गउड़ी महला ९ ।।

साधो मन का मानु तिआगउ।।
कामु क्रोधु संगति दुरजन की ता ते अहिनिसि भागउ।।१।।
रहाउ।।
सुखु दुखु दोनो सम करि जानै अउरु मानु अपमाना।।
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना।।१।।
उसतति निंदा दोऊ तिआगै खोजै पदु निरबाना।।
जन नानक इहु खेलु कठनु है किनहू गुरमुखि
जाना।।२।।१।।

हे सन्तो! अपने मन का अहं (मान) छोड़ दो।
काम, क्रोध और दुर्जनों की संगति से सदा दूर रहो।
जो मनुष्य सुख-दुख, मान-सम्मान दोनों को एक समान समझता है, और हर्ष तथा शोक से अनासक्त रहता है, ऐसे पुरुष ने संसार में उस परम तत्व को जान लिया है। स्तुति व निन्दा दोनों का ही त्याग करें तथा मुक्ति पद अर्थात् मोक्ष की खोज करे। यह (कार्य) खेल बहुत कठिन है। कोई (विरला) गुरुमुख ही इसे कर सकता है।

हिन्द-रक्षक : श्री गुरु तेग बहादुर जी

।। गउड़ी महला ९ ।।

साधो रचना राम बनाई ।।

इकि बिनसै इक असथिरु मानै अचरजु लखिओ न जाई ।।१।।रहाउ।।

काम क्रोध मोह बसि प्रानी हरि मूरति बिसराई ।।

झूठा तनु साचा करि मानिओ जिउ सुपना रैनाई ।।१।।

जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाई ।।

जन नानक जगु जानिओ मिथिआ रहिओ राम सरनाई ।।२।।२।।

हे सन्तो ! इस संसार की रचना प्रभु ने की है। एक इसे नश्वर समझता है तो अन्य इसे स्थायी समझता है। इस आश्चर्य का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता है। काम - क्रोध और मोह के वश में जीव ने हरि को भुला दिया है। रात्रि के स्वप्न के समान नाशवान् शरीर को स्थिर शाश्वत मान लिया है। जो दिख रहा है, वह सब बादल की परछाई के समान नष्ट हो जायेगा। प्रभु-भक्त ने संसार को नश्वर समझ कर सदा ईश्वर की शरण में निवास कर लिया है।

।। गउड़ी महला ९ ।।

प्रानी कउ हरि जसु मनि नही आवै ।।
अहिनिसि मगनु रहै माइआ मै कहु कैसे गुनु गावै ।।१।। रहाउ ।।
पूत मीत माइया ममता सिउ इह बिधि आपु बंधावै ।।
मृग तृसना जिउ झूठो इह जग देखि तासि उठि धावै ।। १ ।।
भुगति मुकति का कारनु सुआमी मूढ़ ताहि बिसरावै ।।
जन नानक कोटन मै कोऊ भजनु राम को पावै ।।२।।३।।

इस जीव को प्रभु (यश) की याद नहीं आती। दिन, रात माया के नशे में लीन रहता है। प्रभु के गुण गान कैसे करे ? जीव पुत्र, मित्र और माया की ममता से ऐसे ही स्वंय को बंधवा लेता है। मृग-तृष्णा के समान यह संसार मिथ्या है। परन्तु प्राणी इस के विषयों में आसक्त होकर इसके पीछे भागता है। भोग तथा मोक्ष का मूल कारण प्रभु है। मगर उसे यह मूर्ख जीव भुला देता है। करोड़ों में कोई विरला भक्त ही राम के भजन को प्राप्त कर सकता है।

।। गउड़ी महला ९ ।।

साधो इहु मनु गहिओ न जाई ।।
चंचल तृसना संगि बसतु है या ते थिरु न रहाई ।।१।। रहाउ।।
कठन क्रोध घट ही के भीतरि जिह सुधि सभ बिसराई ।।
रतनु गिआनु सभ को हिरि लीना ता सिउ कछु न बसाई ।। १ ।।
जोगी जतन करत सभि हारे गुनी रहे गुन गाई।।
जन नानक हरि भए दइआला तउ सभ बिधि बनि आई ।।२।।४ ।।

हे सन्तो ! यह मन वश में नहीं हो सकता। मन के साथ चंचल तृष्णा निवास करती है इसी कारण मन स्थिर नहीं रहता । यदि, क्रोध हृदय के अन्दर ही है जिसने सुध-बुध भुला दी है। क्रोध ने सभी का ज्ञान रूपी रत्न हर लिया है। उसके आगे किसी का वश नहीं चलता है। योगी क्रोध को वश करने के सभी प्रकार के यत्न करके हार गए, गुणीजन गुण गाते रहे। यदि प्रभु दयालु हो जाए तो सब प्रकार के साधन बन जाते है।

।। गउड़ी महला ९।।

साधो गोबिन्द के गुन गावउ।।

मानस जनमु अमोलकु पाइयो बिरथा काहि गवावउ।।१।।

रहाउ।।

पतति पुनीत दीन बंध हरि सरनि ताहि तुम आवउ।।

गज को त्रासु मिटिओ जिह सिमरत तुम काहे बिसरावउ।। १।।

तजि अभिमान मोह माइया फुनि भजन राम चितु लावउ।।

नानक कहत मुकति पंथ इहु गुरमुखि होइ तुम पावउ।।२।।५।।

हे सन्तो! प्रभु के गुण गाओ। यह अमूल्य मानव जन्म तुमको मिला है। इसे व्यर्थ क्यों गंवा रहे हो वह प्रभु पतितपावन और जो दीनबंधु है उस प्रभु की शरण में तुम जाओ। जिस प्रभु को स्मरण-मात्र से गज का भय दूर हो गया हो उस प्रभु को तुम क्यों भुलाते हो। अभिमान,मोह को त्याग कर पुनः प्रभु में मन लगाओ। गुरु नानक देव कहते हैं कि मुक्ति का यही मार्ग है गुरुमुख होकर तुम इसे प्राप्त करो।

।। गउड़ी महला ९।।

कोऊ माई भूलियो मन समझावै।।

वेद पुरान साध मग सुनि करि।।

निमख न हरि गुन गावै।। १।। रहाउ।।

दुरलभ देह पाइ मानस की बिरथा जनमु सिरावै।।

माइआ मोह महा संकट बन ता सिउ रुच उपजावै।।१।।

अंतरि बाहरि सदा संगि प्रभु ता सिउ नेहु न लावै।।

नानक मुकति ताहि तुम मानहु जिह घटि रामु समावै।।२।।६।।

हे माता ! कोई भूले हुए मन को समझा दे। वेदों, पुराणों तथा सन्तों के यश को सुनकर भी एक पल के लिए भी मन प्रभु के गुण नहीं गाता। दुलर्भ मानव शरीर को पाकर भी जन्म व्यर्थ गंवा रहा है। माया, मोह अति दुखदायी है इनमें रुचि पैदा करता है। भीतर बाहर जो प्रभु साथी है उस प्रभु से प्रीति नहीं लगाता। जिस व्यक्ति के हृदय में प्रभु का निवास है उसे तुम मुक्त समझो।

।। गउड़ी महला ९ ।।

साधो राम सरनि बिसरामा ।।
बेद पुरान पढ़े को इह गुन सिमरे हरि को नामा ।।१।। रहाउ ।।
लोभ मोह माइआ ममता फुनि अउ बिखअन की सेवा ।।
हरख सोग परसै जिह नाहनि सो मूरति है देवा ।।
सुरग नरक अमृतु बिखु ए सब तिउ कंचन अरू पैसा ।।
उसतति निंदा ए सम जा कै लोभु मोहु फुनि तैसा ।।
दुखु सुखु ए बाधे जिह नाहनि तिह तुम जानउ गिआनी ।।
नानक मुकति तहि तुम मानउ इह बिधि को जो प्रानी ।।३।।७ ।।

हे सन्तो ! प्रभु की शरण ही स्थिर आश्रय है। वेद-पुराणों के पढ़ने का यही लाभ है कि प्रभु के गुणों का गान करें। लोभ,मोह,माया,ममता और फिर विषय विकारों की आसक्ति तथा हर्ष-शोक जिस मानव को स्पर्श नहीं करते वह प्रभु की मूर्ति है। उसके लिए स्वर्ग-नरक, अमृत-विष तथा स्वर्ण-ताम्बा एक समाने हैं। स्तुति व निन्दा समान हैं वैसे ही लोभ मोह एक तुल्य हैं। जो सुख-दुख के बन्धन में नहीं पड़ता, उसे तुम ज्ञानी पुरुष समझो। इस प्रकार के गुणों वाले प्राणी को तुम मुक्त जीव समझो।

।।गउड़ी महला ९।।

मन रे कहा भइओ तै बउरा।।
अहिनिसि अउध घटै नही जानै भइओ लोभ संगि हउरा।।१।।
रहाउ।।
जो तनु तै अपनो करि मानिओ अरू सुन्दर गृह नारी।।
इन में कछु तेरो रे नाहनि देखो सोच बिचारी।। १।।
रतन जनमु अपनो तै हारिओ गोबिंद गति नही जानी।।
निमख न लीन भइओ चरनन सिउ बिरथा अउध सिरानी।।२।।
कहु नानक सोई नरू सुखीआ राम नाम गुन गावै।।
अउर सगल जगु माइया मोहिआ निरभै पदु नही पावै।। ३।।८।।

हे मन ! तू क्यों बावला हो रहा है? दिन-रात आयु घटती है, इसका तुझे ज्ञान नहीं । लोभ के साथ तू तुच्छ हो रहा है। जिस शरीर, सुन्दर गृह तथा सुन्दर स्त्री को तूने अपना समझ रखा था। इन पदार्थों में तेरा कुछ भी नहीं है यह सोच-विचार कर देख लो। तूने अपने रत्न के तुल्य मानव जन्म को हार दिया, क्योंकि तूने प्रभु की गति नहीं जानी। एक क्षण के लिए भी तू प्रभु-चरणों में लीन नहीं हुआ-आयु व्यर्थ ही व्यतीत कर दी। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि वह पुरुष सुखी है जिसने प्रभु के गुणों का गान किया है। सारा जगत माया-मोहित है।इसी कारण निर्भय पद को नहीं पाता।

।।गउड़ी महला ९।।

नर अचेत पाप ते डरु रे।।

दीन दइआल सगल भै भंजन सरनि ताहि तुम परु रे।।१।।
रहाउ।।

बेद पुरान जास गुन गावत ता को नामु हीऐ मो धरु रे।।

पावन नामु जगति मै हरि को सिमरि कसमल सभु हरु रे।।१।।

मानस देह बहुरि नह पावै कछू उपाय मुकति का करु रे।।

नानक कहत गाइ करुनामै भव सागर कै पारि उतरु
रे।।१।।९।।२५।।

हे विवेकहीन नर ! पाप कर्मों से डर। प्रभु दीनदयालु है, सभी प्रकार के भय को दूर करने वाला है, उसकी शरण में पड़ो। वेद-पुराण जिसके गुण गाते हैं उस प्रभु के नाम को तुम हृदय में धारण करो। जगत में प्रभु का नाम पवित्र है। उसका स्मरण करके सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर लो। यह मानव जन्म फिर नहीं मिलेगा। अत: मुक्ति का कुछ उपाय कर ले। गुरु नानक देव कहते हैं कि करुणामय प्रभु के गुणों को गाकर भंव-सागर से पार उतर जा।

।।१ ओंकार सतिगुरु परसादि।।

।। रागु आसा महला ९।।

बिरथा कहउ कउन सिउ मन की।।

लोभि ग्रसिओ दसहू दिस धावत आसा लागियो धन की।। १।। रहाउ।।

सुख कै हेति बहुतु दुखु पावत सेव करत जन जन की।।

दुआरहि दुआरि सुआन जिउ डोलत नह सुध राम भजन की।।१।।

मानस जनमु अकारथ खोवत लाज न लोक हसन की।।

नानक हरि जसु किउ नही गावत कुमति बिनासै तन की।।२।।१।।२३३।।

अपने मन की पीड़ा किससे कहूँ ? लोभ ग्रस्त मन दसों दिशाओं में भटकता है। इसे धन संग्रह की आशा लगी है। सुख-प्राप्ति के लिए बहुत दुःख पाता है, हर प्राणी की सेवा करता है। कुत्ते के समान द्वार-द्वार डोलता है। इसे प्रभु-भजन की याद नहीं। मानव जन्म व्यर्थ गंवा रहा है इसे लोक लाज नहीं है। हे मानव ! तू प्रभु-यश क्यों नहीं गाता है? जिससे मन की कुमति दूर हो जाए।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। रागु देवगंधारी महला ९।।

यह मनु नैक न कहिओ करै।।
सीख सिखाइ रहिओ अपनी सी दुरमति ते न टरै।।१।। रहाउ।।
मदि माइआ कै भइओ बावरो हरि जसु नहि उचरै।।
करि परपंचु जगत कउ डहकै अपनो उदरू भरे।। १।।
सुनान पूछ जिउ होई न सूधो कहिओ न कानु धरै।।
कहु नानक भजु राम नाम नित जा ते काजु सरै।।२।।१।।

यह मन तनिक भी कहा हुआ नहीं मानता। मैं अपनी ओर से शिक्षा देता रहता हूं पर यह अपनी दुर्मति से ही नहीं हटता। माया के नशे में पागल हुआ जीव प्रभु के नाम का उच्चारण नहीं करता और छल से जगत को छलता है तथा अपनी उदर-पूर्ति करता है। मन कुत्ते की पूंछ के समान कुटिल है, यह दी हुई शिक्षा को ध्यान से नहीं सुनता। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि नित्यप्रति प्रभु- भजन कर जिससे तेरा जीवन सफल हो जाए।

।।देवगंधारी महला ९।।

सभि किछु जीवत को बिवहार।।

मात पिता भाई सुत बंधप अरू फुति गृह की नारि।।१।।रहाउ।।

तन ते प्रान होत जब निआरे टेरत प्रेति पुकार।।

आध घरी कोऊ नहि राखै घरि ते देत निकारि।।१।।

मृग तृसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै विचारि।।

कहु नानक भजु राम नाम नित जा ते होत उधार।। २।।२।।

संसार में जीवित व्यक्ति के ही सारे व्यवहार हैं। माता, पिता, भाई, पुत्र, बन्धु-बान्धव तथा फिर गृह की नारी यह जीवन के संगी हैं। जब शरीर से प्राण अलग हो जाते हैं तो सभी सम्बन्धी इस शरीर को प्रेत-प्रेत कह कर पुकारते हैं। फिर आधा क्षण भी शरीर को कोई घर में नहीं रखता मृतक शरीर को घर से निकाल देते हैं। हे भाई ! हृदय में सोच कर दे देख लो कि यह संसार रचना मृगतृष्णा के समान है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि प्रभु के नाम का नित्य भजन कर जिससे तुम्हारा उद्धार होजाए।

।।देवगंधारी महला ९।।

जगत महि झूठी देखी प्रीति।।
अपने ही सुख सिउ सभ लागे किया दारा किआ मीत।।१।।
रहाउ।।
मेरउ मेरउ सभै कहत है हित सिउ बाधिओ चीत।।
अंति काल संगी नह कोऊ इह अचरज है रीति।। १।।
मन मूरख अजहू नह समझत सिख दे हारिओ नीत।।
नानक भउजलु पारि परै जिउ गावै प्रभु के
गीत।।२।।३।।६।।३८।।४७।।

इस संसार में झूठा प्रेम देखा। स्त्री अथवा मित्र, सब ही अपने सुख में लीन हैं। मेरा-मेरा सभी कहते हैं पर सबका मन अपने-अपने में बंधा है। अन्त समय में कोई भी साथी नहीं है। यही इस संसार का आश्चर्यजनक सच्च है। यह मूर्ख मन अभी भी नहीं समझता, मै इसे शिक्षा दे-देकर हार गया हूँ। जो मानव प्रभु के गीत गाता है, वह संसार सागर से पार हो जाता है।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।।रागु बिहागड़ा महला ९।।

हरि की गति नहि कोऊ जानै।।
जोगी जती तपी पचि हारे अरू बहु लोग सिआने।। १। रहाउ।।
छिन महि राउ रंक कउ करई राउ रंक करि डारे।।
रीते भरे भरे सखनावै यह ता को बिवहारे।। १।।
अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा।।
नाना रूपु धरे बहुरंगी सभ ते रहै निआरा।। २।।
अगनत अपारु अलख निरंजन जिह सभ जगु भरमाइओ।।
सगल भरम तजि नानक प्राणी चरनि ताहि चितु लाइओ।। ३।।
१।। २।।

प्रभु की गति को कोई नहीं जानता। योगी, यति, तपस्वी तथा बहुत से चतुर जन प्रयत्न करके हार गये। वह प्रभु एक क्षण में गरीब को राजा बना देता है और एक क्षण में ही एक राजा को गरीब बना देता है। प्रभु रिक्त को भर देता है तथा भरे को रिक्त कर देता है । यह उसका व्यवहार है। उसने अपनी माया आप ही फैला रखी है तथा स्वयं ही उसका दर्शक है। अनेक रंगों वाला वह प्रभु अनेक रूप धारण करता है फिर भी सबसे अलग रहता है। वह प्रभु अलक्ष्य है, अनगिनत ,है अपार है, निरंजन है जिसने सारे संसार को अपनी माया से भ्रमित कर रखा है। हे प्राणी ! सम्पूर्ण भ्रमों को त्याग कर उस प्रभु के चरणों में मन को लगा दो।

१ ओंकार सतिगुर परसादि ।।

।।सोरठि महला ९।।

रे मन राम सिउ करि प्रीति।।
स्रवन गोबिन्द गुनु सुनउ, अरु गाउ रसना गीति। १। रहाउ।।
करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत।।
कालु बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीत।। १।।
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति।।
कहै नानकु रामु भजि लै जात अउसरु बीत।। २।। १।।

हे मन ! प्रभु से प्रेम कर। कानों से प्रभु के गुणों को सुनो तथा जिह्वा से प्रभु का यशो-गान करो। साधु की संगति कर, प्रभु को याद कर इस प्रकार तू पतित से पवित्र हो जाएगा। हे मित्र ! काल सर्प की भांति मुख फैलाए भ्रमण कर रहा है। हे मानव ! इस बात का मन में विचार कर ले कि यह काल तुझे आज अथवा कल ग्रस लेगा। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मानव ! प्रभु को भज ले समय बीत रहा है।

।।सोरठि महला ९।।

मन की मन ही माहि रही।।
ना हरि भजै न तीरथ सेवे चोटी कालि गही।। १। रहाउ।।
दारा मीत पूत रथ संपति धन पूरन सभ मही।।
अवर सगल मिथिआ ए जानउ भजनु राम को सही।। १।।
फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानस देह लही।।
नानंक कहत मिलन की बरीआ सिमरत कहा नही।। २।। २।।

मन की आशा मन में ही रही। उसने न तो प्रभु भजन किया और न तीर्थों का सेवन किया। काल ने आकर चोटी पकड़ ली। स्त्री, मित्र, पुत्र, रथ, संपति, धन तथा सम्पूर्ण पृथ्वी नश्वर है। ये तथा अन्य सभी पदार्थ नश्वर हैं। प्रभु का भजन ही एकमात्र सत्य वस्तु है। अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए तूने बहुत से जन्म व्यतीत कर दिए। अब तुझे वह मानव शरीर प्राप्त हुआ है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि (मानव जन्म ही) तेरा प्रभु-मिलन का समय है ।अतः प्रभु का स्मरण क्यों नहीं करता?

।। सोरठि महला ९ ।।

मन रे कउनु कुमति तै लीनी ।।
पर दारा निंदिआ रस रचिओ राम भगति नही कीनि ।। १ । रहाउ ।।
मुकति पंथु जानिओ तै नाहनि धन जोरन कउ धाइआ ।।
अंति संग काहू नही दीना बिरथा आपु बंधाइआ ।। १ ।।
ना हरि भजिओ न गुर जनु सेविओ नह उपजिओ कछु गिआना ।।
घटि ही माहि निरंजनु तेरै तै खोजत उदिआना ।।
बहुत जनम भरमत तै हारिओ असथिर मति नही पाई ।।
मानस देह पाइ पद हरि भजु नानक बात बताई ।। ३ ।।३ ।।

हे मन ! तूने कौन सी कुमति ले ली है। तू पर-स्त्री तथा पर-निन्दा के रसास्वादन में डूबा हुआ है। प्रभु की भक्ति नहीं की। मोक्ष का मार्ग तूने नहीं जाना-धन संग्रह करने के लिए दौड़ता रहा। अन्त समय पर तेरा कोई भी साथ नहीं देगा। व्यर्थ ही स्वयं को बन्धनों में बांध रहा है। तूने न प्रभु का भजन किया, न ही गुरुजनों की सेवा की व न तुझमें कुछ ज्ञान उपजा। तेरे हृदय में ही माया रहित प्रभु का वास है पर तू उसे जंगलों में खोज रहा है। तूने कई जन्म भटकते हुए गंवा दिए, परन्तु उसकी प्राप्ति नहीं हुई। गुरु नानक देव ने यह बात समझा कर बताई है कि तूने अमूल्य मानव-शरीर पाया है। अतः प्रभु का भजन कर।

।। सोरठि महला ९ ।।

मन रे प्रभु की सरनि बिचारो ।।
जिह सिमरत गनका सी उधरी ता को जसु उर धारो ।।१।।रहाउ ।।
अटल भइओ धूआ जा कै सिमरनि अरू निरभै पदु पाइआ ।।
दुख हरता इह बिधि को सुआमी तै काहे बिसराइआ ।।
जब ही सरनि गही किरपा निधि गज गराह ते छूटा ।।
महमा नाम कहा लउ बरनउ राम कहत बंधन तिह तूटा ।। २ ।।
अजामलु पापी जगु जाने निमख माहि निसतारा ।।
नानक कहत चेति चिंतामनि तै भी उतरहि पारा ।। ३ ।।४ ।।

हे मन ! प्रभु की शरण का विचार करो जिस प्रभु का स्मरण करते गणिका जैसी का उद्धार हो गया उस प्रभु के यश को हृदय में धारण करो । जिस प्रभु के स्मरण से ध्रुव ने स्थिर तथा निर्भय पद को प्राप्त किया । दुखों को दूर करने वाले प्रभु को तूने क्यों भुला दिया है । जग कृपा-निधि प्रभु की शरण गज ने ली जो वह ग्राह से छुट गया । मै नाम की महिमा कहां तक वर्णन करु ? जिसने प्रभु का नाम लिया, वह बन्धनों से मुक्त हो गया । अजामिल पापी को जग जानता है उसकी नाम-स्मरण से एक क्षण में मुक्ति हो गई । गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे भाई ! इसलिए तू भी चिन्तामणि प्रभु का स्मरण कर, तू भी भव- सागर से पार उतर जाएगा ।

[illegible] : श्री गुरु तेग बहादुर जी

।। सोरठि महला ९ ।।

प्रानी कउनु उपाउ करै।।
जा ते भगति राम की पावै जम को त्रासु हरै।।१। रहाउ।।
कउनु करम बिदिआ कहु कैसी धरमु कउनु फुनि करई।।
कउनु नामु गुर जा कै सिमरै भव सागर कउ तरई।। १।।
कल मै एकु नामु किरपा निधि जाहि जपै गति पावै।।
अउर धरम ताकै सति नाहिन इहि बिधि बेदु बतावै।। २।।
सुखु दुखु रहत सदा निरलेपी जा कउ कहत गुसाई।।
सो तुम ही महि बसै निरंतरि नानक दरपनि निआई।। ३।।५।।

जीव कौन सा उपाय करे, जिसके द्वारा प्रभु की भक्ति प्राप्त कर ले तथा यम के भय को दूर कर ले । कौन - सा धर्म करे ? वह कौन सा नाम है ? जिस नाम के स्मरण से संसार-सागर से पार उतर जाएं। कलियुग में कृपानिधि प्रभु का नाम ही एक ऐसा उत्तम साधन है, जिसका जाप करके मनुष्य परमगति को पा लेता है। अन्य कोई धर्म उस प्रभु नाम के तुल्य नहीं, ऐसा वेद भी बदलाते हैं। जिसे पृथ्वी का स्वामी कहते हैं वह सुख-दुख से सदा निर्लिप्त रहता है। वह प्रभु सदा तुम्हारे आत्मा में ही निवास करता है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब।

।। सोरठि महला ९ ।।

माई मै किहि बिधि लखउ गुसाई ।।
महा मोह अगिआनि तिमरि मो मनु रहिओ उरझाई ।।१।रहाउ।।
सगल जनम भरम ही भरम खोइओ नह असथिरु मति पाई ।।
बिखिआ सकत रहिओ निस बासुर नह छूटी अधमाई ।। १ ।।
साधसंगु कबहु नही कीना नह कीरति प्रभु गाई ।।
जन नानक मै नाहि कोऊ गुनु राखि लेहु सरनाई ।। २ ।। ६ ।।

हे माता ! मै किस प्रकार प्रभु को देखूँ? अति मोह से उपजे ज्ञान रूपी अन्धकार के कारण मेरा मन संसार में फंसा हुआ है। सारा जीवन मैंने माया की भटकन में ही खो दिया, अभी तक मैंने स्थिर मति नहीं पाई। रात-दिन विषय-विकारों में आसक्त रहा, मेरी नीचता नहीं छूटी। न तो कभी सत्संग किया न ही कभी प्रभु-यश का गायन किया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे प्रभु ! मुझ दास में कोई गुण नहीं । मैं आप की शरण में आया हूँ मेरी रक्षा करो।

।। सोरठि महला ९ ।।

माई मनु मेरो बसि नाहि।।
निस बासुर बिखिअन कउ धावत किहि बिधि रोकउ ताहि।। १।। रहाउ।।
बेद पुरान सिमृति के मत सुनि निमख न हीए बसावै।।
पर धन पर दारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै।।
मदि माइआ कै भइओ बावरो सूझत नह कछु गिआना।।
घट ही भीतरि बसत निरजंनु ता को मरमु न जाना।। २।।
जब ही सरनि साध की आइओ दुरमति सगल बिनासी।।
तब नानक चेतिओ चिंतामनि काटी जम की फासी।।३।।७।।

हे माता ! मेरा मन मेरे वश में नहीं है। यह दिन-रात विषयों की और दौड़ता है उसे किस प्रकार रोकूं ? वेदों पुराणों तथा स्मृतियों के उपदेशों को सुनकर एक क्षण के लिए भी प्रभु नाम को मन में नहीं बसाता। पराये धन तथा पराई स्त्री में लीन जन्म को व्यर्थ ही बिता रहा है। माया के नशे में बावला हो गया है। अत: कुछ ज्ञान नहीं सूझता। मानस हृदय में ही मायारहित प्रभु का निवास है पर उसके रहस्य को नहीं जान पाता है। जब साधु की शरण में आ जाता है तो उस की सारी कुबुद्धि दूर हो जाती है। तब मन चिन्तामणि प्रभु का स्मरण करता है तथा स्मरण से ही यम का फन्दा काट लेता है।

।। सोरठि महला ९ ।।

रे नर इह साची जीअ धारि ।।

सगल जगतु है जैसे सुपना बिनसत लगत न बार ।। १ ।। रहाउ ।।

बारू भीति बनाई रचि पचि रहत नही दिन चारि ।।

तैसे ही इह सुख माइआ के उरझिओ कहा गवार ।। १ ।।

अजहू समझि कछु बिगरिओ नाहिनि भजि ले नामु मुरारि ।।

कहु नानक निज मतु साधन कउ भाखिओ तोहि पुकारि ।। २ ।।

७ ।।

हे जीव ! यह सत्य बात मन में धारण कर लो। यह सारा जगत स्वप्न समान है, इसे नष्ट होते देर नहीं लगती। जैसे रेत की दीवार बनाई, उसे लेप कर स्वच्छ किया पर वह चार दिन भी नहीं रहती। वैसे ही यह माया-जन्य सुख भी अस्थिर है। हे मूर्ख प्राणी ! तू इनमें क्यों उलझ रहा है ? अब भी समझ ले, कुछ नहीं बिगड़ा और प्रभु के नाम को जप ले। गुरु नानक देव कहते हैं कि मैंने अपने मत को साधन सहित पुकार-पुकार कह दिया है।

।। सोरठि महला ९ ।।

इह जगि मीतु न देखिओ कोई ।।

सगल जगतु अपनै सुखि लागिओ दुख मै संगि न होई ।। १ ।। रहाउ ।।

दारा मीत पूत सनबंधी सगरे धन सिउ लागे ।।

जब ही निरधन देखिओ नर कउ संगु छाडि सभ भागे ।। १ ।।

कहउ कहा यिआ मन बउरे कउ इन नेहु लगाइओ ।।

दीनानाथ सकल भै भंजन जसु ताको बिसराइओ ।। २ ।।

सुआन पूछ जिउ भइओ न सूधउ बहुतु जतनु मै कीनउ ।।

नानक लाज बिरद की राखहु नामु तुहारउ लीनउ ।। ३ ।। ९ ।।

इस संसार में कोई मित्र नहीं देखा। सम्पूर्ण विश्व अपने सुखों में लीन है। दुःख में कोई किसी का साथी नहीं होता। स्त्री, मित्र, पुत्र, भाई-बन्धु सभी धन से स्नेह करते हैं। जैसे ही मानव निर्धन हुआ सारे सम्बन्धी उसका साथ छोड़कर भाग जाते हैं। मैं पागल मन को कैसे समझाऊं? इसने इनसे प्रेम किया है। दीनों के बन्धु सारे भय को दूर करने वाले प्रभु को भुला दिया। जैसे कुत्ते की पूंछ सीधी नहीं होती, मैंने बहुत प्रयत्न किए पर मन प्रभु-भजन में लीन नहीं होता है। हे प्रभु ! आप अपने भक्त की लाज रखो क्योंकि मैंने आपके नाम का ही आश्रय लिया है।

।। सोरठि महला ९।।

मन रे गहिओ न गुरु उपदेसु।।
कहा भइयो जउ मूडु मुडाइओ भगवउ कीनो भेसु।।१।। रहाउ।।
साच छाडि कै झूठह लागिओ जनमु अकारथु खोइओ।।
करि परपंच उदर निज पोखिओ पसु की निआई सोइओ।। १।।
राम भजन की गति नही जानी माइआ हाथि बिकाना।।
उरझि रहिओ बिखिअन संगि बउरा नामु रतनु बिसराना।। २।।
रहिओ अचेत न चेतिओ गोबिंद बिरथा अउध सिरानी।।
कहु नानक हरि बिरदु पछानउ भूले सदा पराणी।। ३।। १०।।

हे मन ! तूने गुरु का उपदेश ग्रहण नहीं किया। सिर मुण्डाने से अथवा भगवा भेष धारण करने से क्या होता है? सत् वस्तुओं का त्याग करके नाशवान् में लगा रहा। अमूल्य मानव जन्म को व्यर्थ ही गंवा दिया। छल-कपट करके उदरपूर्ति की तथा पशु की भांति सोता रहा। प्रभु भजन की युक्ति नहीं जानी, माया के हाथ बिक गया। यह पागल मन विषय विकारों में आसक्त रहा।इसने प्रभु के नाम रूप रत्न को भुलाए रखा।यह मन अचेत ही रहा, प्रभु का चिन्तन नहीं किया। व्यर्थ ही आयु व्यतीत कर दी। गुरु नानक देव कहते हैं, हे प्रभु ! अपने भक्त को सदा याद रखिए, जीव तो सदा भूलने वाला है।

।। सोरठि महला ९।।

जो नरु दुखु मै दुखु नही मानै।।
सुख सनेहु अरु भै नही जाकै कंचन माटी मानै।। १।। रहाउ।।
नह निंदिआ नह उसतति जा कै लोभ मोह अभिमाना।।
हरख सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना।। १।।
आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा।।
कामु करोध जिह परसै नाहनि तिह घटि बरहमु निवासा।। २।।
गुर किरपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी।।
नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ जिउ पानी संगि पानी।। ३।।
११।।

जो प्राणी दुःख मे दुःख नहीं मानता। जिस को सुख से लगाव नही किसी से भय नहीं, स्र्वण को मिट्टी के तुल्य मानता है, न किसी की निन्दा करता है तथा न ही किसी की स्तुति करता है। जिसके मन में लोभ, मोह तथा अभिमान नहीं है। हर्ष-शोक से निर्लिप्त रहता है। मान-अपमान (उसे) प्रभावित नहीं करते। सभी आशाओं तथा मनोकामनाओं का त्याग करके जो संसार से निर्लिप्त रहता है। काम क्रोध जिसे स्पर्श नहीं करते, उस प्राणी के हृदय में ब्रह्मा का निवास होता है।जिस प्राणी पर गुरु ने यह कृपा की, उसने इस युक्ति को जान लिया। यह प्राणी प्रभु में उसी प्रकार लीन हो जाता है जैसे जल के साथ जल मिल जाता है।

॥ सोरठि महला ९ ॥

प्रीतम जानि लेहु मन माही ॥
अपने सुख सिउ ही जगु फाधियो को काहू को नाही ॥ १ ॥ रहाउ ॥
सुख मै आनि बहुतु मिलि बैठत रहत चहू दिसि घेरै ॥
बिपति परी सभ ही संगु छाडित कोऊ प आवत नेरै ॥ १ ॥
घर की नारी बहुतु हितु जा सिउ सदा रहत संग लागी ॥
जब ही हंस तजी इह काइआ प्रेत प्रेत करि भागी ॥ २ ॥
इह बिधि को बिउहारु बनिओ है जा सिउ नेहु लगाइओ ॥
अंत बार नानक बिनु हरि जी कोउ कामि न आइओ ॥ ३ ॥ १२ ॥ १३१ ॥

अपने मन में ही प्रभु को जान लो। संसार अपने स्वार्थ में ही बंधा हुआ है, कोई किसी का नहीं। सुख में बहुत से मित्र आकर मिलकर बैठते हैं तथा चारों ओर से घेरे रहते हैं। आपत्ति आने पर सभी साथ छोड़ आते हैं, कोई भी निकट नहीं आता है। घर की स्त्री जिससे बहुत स्नेह था तथा सदैव पति के साथ रहती थी। जैसे ही आत्मा शरीर को त्याग देता है वैसे ही वह मृत शरीर को प्रेत-प्रेत कहकर भाग जाती है। अन्तिम समय पर बिना प्रभु के कोई काम नहीं आता है।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। धनासरी महला ९ ।।

काहे रे बन खोजन जाई।।
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई।। १।। रहाउ।।
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई।।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई।। १।।
बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआनु बताई।।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।। २।। १।।

हे जीव ! उस प्रभु को जंगलों में खोजने क्यों जाते हो ? वह सर्वत्र निवास करता है सदा निर्लेप है। पुन: तुझमें ही समाया हुआ है। जैसे पुष्प के मध्य सुगन्धि तथा दर्पण में परछाई का बास होता है।हे भाई ! वैसे ही प्रभु सदा तुझमें निवास करता है। उसे हृदय में ही खोजो। अन्दर-बाहर एक ही प्रभु को सर्वव्यापी समझो। यह ज्ञान गुरु ने बताया है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि आत्म-चिन्तन के बिना भ्रम की दुविधा दूर नहीं की जा सकती।

।। धनारसी महला ९ ।।

साधो इहु जगु भरम भुलाना ।।
रामनाम का सिमरनु छोडिया माइआ हाथि बिकाना ।। १ । रहाउ ।।
मात पिता भाई सुत बनिता ता कै रसि लपटाना ।।
जोबुन धनु प्रभता कै मद मै अहिनिसि रहै दिवाना ।। १ ।।
दीन दइआल सदा दुख भंजन ता सिउ मनु न लगाना ।।
जन नानक कोटन मै किनहू गुरमुखि होइ पछाना ।। २ ।।२ ।।

हे सज्जनों ! यह जग माया के भ्रमवश भटका हुआ है। प्रभु के नाम का स्मरण त्याग कर माया के हाथ बिका हुआ है। माता, पिता, भाई, पुत्र तथा स्त्री इनके प्रेम-रस में तू फंसा हुआ है। यौवन, ध्यान, प्रभुत्व के नशे में दिन रात दीवाना हो रहा है। दीन दयाल, सदा दुःखहर्ता प्रभु में तू मन नहीं लगाता है। करोड़ों में किसी बिरले गुरुमुख ने प्रभु को पहचाना है।

।। धनारसी महला ९ ।।

तिह जोगी कउ जुगति न जानउ ।।
लोभ मोह माइआ ममता फुनि जिह घटि माहि पछानउ ।। रहाउ ।।
पर निंदा उसतति नह जाकै कंचल लोह समानो ।।
हरख सोग ते रहै अतीता जोगी ताहि बखानो ।। १ ।।
चंचल मनु दह दिसि कउ धावत अचल जाहि ठहरानो ।।
कहु नानक इह बिधि को जो नरु मुकति ताहि तुम मानो ।।
२ ।।३ ।।

उस योगी को प्रभु से जुड़ा हुआ न समझो। जिसके हृदय में लोभ, मोह,माया की ममता आदि विकार समाए हुए हैं। जिसके मन में परनिन्दा व पराई स्तुति नहीं है, जो स्वर्ण को लोहवत् समझता है, हर्ष-शोक से निर्लिप्त रहता है, उस पुरुष के लिए ''योगी'' पद का उच्चारण करो। चंचल मन दसों दिशाओं में भ्रमण करता है ,परन्तु जिसने इस अस्थिर मन को अचल प्रभु के नाम-स्मरण में स्थिर कर लिया है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि इस प्रकार के गुणों वाले व्यक्ति को तुम मुक्त समझो।

।। धनासरी महला ९ ।।

अब मै कउनु उपाय करउ ।।
जिह बिधि मन को संसा चूकै भउ निधि पारि परउ ।। १ ।। रहाउ ।।
जनमु पाइ कछु भलो न कीनो ता ते अधक डरउ ।।
मन बच क्रम हरि गुन गाए यह जीअ सोच धरउ ।। १ ।।
गुरमति सुनि कछु गिआनु न उपजिओ पसु जिउ उदरु भरउ ।।
कहु नानक प्रभु बिरदु पछानउ तब पतित तरउ ।।
२ ।।४ ।।९ ।।९ ।।१३ ।।५८ ।।४ ।।९३ ।।

अब मै कौन सा उपाय करूँ? जिस से मन की शंका दूर हो जाए तथा संसार सागर से पार हो जाऊँ। मानव जन्म पाकर भी कुछ शुभ कार्य नहीं किए इस कारण अधिक भयतीत हूं। मन-वचन-कर्म से प्रभु का गुणगान नहीं किया,यह हृदय में चिन्ता लगी रहती है। गुरु की शिक्षा सुन कर भी कुछ ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ, मैं पशुवत् उदरपूर्ति करता रहा। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आप अपने भक्त की रक्षा करो तभी मैं पापी भी भवसागर से पार तर सकता हूं।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। जैतसरी महला ९।।

भूलिओ मनु माइआ उरझाइओ।। १।। रहाउ।।
जो जो करम कीओ लालच लगि तिह तिह आपु बंधाइओ।।१।।रहाउ
समझ न परी बिखै रस रचिओ जसु हरि को बिसराइओ।।
संगि सुआमी सो जानिओ नाहिन बनु खोजन कउ धाइओ।। १।।
रतनु रामु घट ही के भीतरि ता को गिआनु न पाइओ।।
जन नानक भगवंत भजन बिनु ब्रिरथा जनमु गवाइओ।। २।।१।।

भूला हुआ मन माया में उलझ गया लालच में लग कर जो जो काम किए, उन कार्यों से स्वयं को बन्धनों में बांध लिया। परम तत्त्व की समझ नहीं आई। विषय-वासनाओं के रस में लीन रहा, प्रभु यश को भुला दिया। जो प्रभु सदा तेरे साथ निवास करता है उस प्रभु को तूने जाना नहीं, उसे खोजने के लिए वन में दौड़ता-भागता फिर रहा है। रत्न-स्वरूप प्रभु तेरे हृदय के अन्दर है,उसका ज्ञान तूने नहीं पाया है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे नर! तूने प्रभु भजन के बिना अपना जन्म व्यर्थ ही गंवा दिया है।

।। जैतसरी महला ९ ।।

हरि जू राखि लेहु पति मेरी।।
जम को त्रास भइओ उर अंतरि, सरनि गही किरपा निधि तेरी।।
१।। रहाउ।।
महा पतित मुगध लोभी फुनि करत पाप अब हारा।।
भै मरबे को बिसरत नाहन तिह चिंता तनु जारा।।१।।
कीए उपाय मुकति के कारनि दहदिसि कउ उठि धाइआ।।
घटि ही भीतरि बसै निरंजनु ता को मरमु न पाइआ।।२।।
नाहिन गुनु नाहिन कछु जपु तपु कउनु करमु अब कीजै।।
नानक हरि परिओ सरनागति अभै दानु प्रभ दीजै।।३।।२।।

हे प्रभु ! मेरी लाज राख लो। यम का डर मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ है। हे कृपानिधि प्रभु ! तेरी शरण ली है। महापापी हूं, मूर्ख हूं, लोभी हूं , पाप करता अब थक गया हूं। मृत्यु का भय भूलता नहीं है, इसी चिन्ता में शरीर को जला दिया। मृत्यु के भय से मुक्ति के अनेक उपाय किए, दसों दिशाओं में भागता रहा। मेरे हृदय में ही प्रभु का निवास है इस ज्ञान को मैंने नहीं पाया। न मुझ में कुछ गुण है, न ही मैंने जप-तप किए हैं, अब कौन-सा (मुक्ति का) उपाय करूँ? हार कर मैं आपकी शरण में आया हूं ! हे प्रभु! अब मुझे अभयदान दो।

१ओंकार सतिगुर परसादि।।

।।जैतसरी महला ९।।

मन रे साचा गहो बिचारा।।
राम नाम बिनु मिथिआ मानो सगरो इहु
संसारा।।१।।रहाउ।।
जा कउ जोगी खोजत हारे पाइओ नाहि तिह पारा।।
सो सुआमी तुम निकटि पछानी रूप रेख ते निआरा।।१।।
पावन नामु जगत मै हरि को कबहू नाहि संभारा।।
नानक सरनि परिओ जग बंदन राखहु बिरदु
तुहारा।।२।।३।।

हे मन ! अपने हृदय में सत्य विचार ग्रहण करो।
एक प्रभु-नाम के अतिरिक्त यह सम्पूर्ण जगत् नश्वर है , ऐसा मानो। जिस प्रभु को योगी खोजते - खोजते हार गए और उसका पार नहीं पा सके, उस प्रभु को तुम अपने निकट समझो, वह रूप रेखा से रहित है। जगत में एक मात्र प्रभु-नाम पवित्र पदार्थ है लेकिन उस को मैंने कभी स्मरण नहीं किया। हे जग के बंदनीय प्रभु ! मै अपकी शरण में पड़ा हूँ। अपने भक्त की रक्षा करो।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। टोडी महला ९।।

क़हउ कहा अपनी अधमाई।। १।।
उरझियो कनक कामनी के रस नह कीरति प्रभ गाई।।रहाउ।।
जग झूठे कउ साचु जान कै ता सिउ रुच उपजाई।।
दीनबंध सिमरिओ नही कबहु होत जु संगि सहाई।। १।।
मगन रहिओ माइआ मै निस दिनि छुटी न मन की काई।।
कहि नानक अब नाहि अनत गति बिनु हरि की सरनाई।।२।। ।१।
।३१।।

मै अपनी नीचता का कहां तक वर्णन करूँ? स्वर्ण तथा स्त्री के रसास्वादन में मेरा मन उलझा रहा, प्रभु के यश का कभी गान नहीं किया। नश्वर संसार को सत्य मान कर इस संसार से ही प्रेम किया है। दीनों के सखा प्रभु का कभी स्मरण नहीं किया जो सदा साथी और सहायक होता है। सदा माया के रसस्वादन में ही मग्न रहा मन की मलिनता कभी नहीं छूटी। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे प्रभु! आप की शरण के अतिरिक्त अब अन्य कोई उपाय नहीं। अत: मै आपकी शरण में आ गया हूं।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। तिलंग महला ९ ।। काफी ।।

चेतना है तउ चेत लै निसि दिनि मै प्रानी।।
छिनु छिनु अउध बिहातु है फूटै घट जिउ पानी।। १।। रहाउ।।
हरि गुन काहि न गावही मूरख अगिआना।
झूठे लालचि लागि कै नहि मरनु पछाना।।
अजहू कछु बिगारिओ नही जो प्रभ गुन गावै।।
कहु नानक तिह भजन ते निरभै पद पावै।। २।। १।।

हे प्राणी! यदि प्रभु का स्मरण करना है तो दिन रात उसका चिन्तन कर।क्षण प्रति क्षण आयु व्यतीत हो रही है जैसे फूटे घड़े से धीरे-धीरे पानी बहता रहता है। हे अज्ञानी ! प्रभु के गुण क्यों नहीं गाता? मिथ्या लोभ में लीन हो कर तूने मृत्यु को नहीं जाना। अभी कुछ नहीं बिगड़ा। यदि अब भी तू प्रभु के गुण गा ले । गुरु नानक देव जी कहते हैं कि उस प्रभु-स्मरण द्वारा निर्भय पद को प्राप्त कर लेगा।

।। तिलंग महला ९ ।।

जाग लेहु रे मना जाग लेहु ।।
कहा गाफल सोइआ ।।
जो तन उपजिआ संग ही सो भी संग न होइआ ।। १ ।। रहाउ ।।
मात पिता सुत बंध जन हितु जा सिउ कीना ।।
जीउ छुटिओ जब देह ते डारि अगनि मै दीना ।। १ ।।
जीवत लउ बिउहारू है जग कउ तुम जानउ ।।
नानक हरि गुन गाइ लै सभ सुफन समानउ ।। २ ।। २ ।।

हे अचेत मन! चेतन हो जा, क्यों असावधान होकर सो रहा है? जो शरीर तेरे साथ ही उत्पन्न हुआ था वह भी अन्त समय तेरा साथी नहीं होगा।माता, पिता, बन्धु-बान्धव तथा सम्बन्धीजन जिनसे तुझे मोह था, जैसे ही शरीर से आत्मा अलग हो गया । शरीर को अग्नि में डाल देंगे। इस संसार का सब व्यवहार जीवित प्राणी के साथ ही है-ऐसा तुम जान लो। प्रभु के गुण गा ले, ये सब सांसारिक वस्तुएं स्वप्न के समान हैं।

।। तिलंग महला ९ ।।

हरि जसु रे मना गाई लै जो संगी है तेरो ।।
अउसरु बीतिओ जातु है कहिओ मान लै मेरो ।।१।।रहाउ।।
संपति रथ धन राज सिउ अति नेहु लगाइओ ।।
काल फास जब गलि परी सभ भइओ पराइओ ।।१।।
जानि बूझ कै बावरे तै काजु बिगारिओ ।।१।।
पाप करत सकुचिओ नही नह गरबु निवारिओ ।।२।।
जिह बिधि गुर उपदेसिआ सो सुनु रे भाई ।।
नानक कहत पुकारि कै गहु प्रभ सरनाई ।।३।।३।।

हे मन ! प्रभु की कीर्ति का गान कर, ज़ो तेरा सदा साथी है। अवसर बीत रहा है, मेरा कहना मान ले। सम्पत्ति, रथ, धन, राज्यसत्ता आदि जिनसे तूने अधिक स्नेह किया, था। यम का फन्दा यदि तेरे गले में आ पड़ा तो ये सभी वस्तुएं पराई हो जायेंगी। हे बावले मन ! तूने सोच-विचार कर अपना कार्य बिगाड़ दिया। पाप करते समय संकोच नहीं किया तथा न ही मन से अंहकार को दूर किया। हे भाई ! जो गुरु ने उपदेश दिया-उसे सावधान होकर सुन! गुरु नानक देव जी पुकार कर कहते हैं कि प्रभु की शरण ग्रहण करो।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। रागु बिलावलु ९ दुपदे।।

दुख हरता हरिनामु पछानो।।
अजामलु गनका जिह सिमरत मुकति भए जीअ जानो।।१।।
रहाउ।।
गज की त्रास मिटी छिनहु महि जब ही रामु बखानो।।
नारद कहत सुनत ध्रुअ बारिक भजन माहि लपटानो।। १।।
अचल अमर निरभै पदु पाइओ जगत जाहि हैरानो।।
नानक कहत भगत रछक हरि निकटि ताहि तुम मानो।।२।।१।

सभी दुःखों को दूर करने वाला प्रभु का नाम है, ऐसा तुम जान लो। अजामिल,गणिका जिस प्रभु के स्मरणमात्र से मुक्त हो गये उस के नाम की महत्ता को हृदय में धारण करो । हाथी का भय एक क्षण में ही दूर हो गया जैसे ही उसने प्रभु-नाम का उच्चारण किया। नारद मुनि के कथन को सुनकर बालक ध्रुव प्रभु-भजन में लीन हो गया। नाम जप कर ध्रुव ने स्थिर,अमर तथा निर्भय पद को प्राप्त किया उसकी बाल्यावस्था तथा उच्च पद प्राप्ति को देखकर संसार आश्चर्यचकित रह गया। प्रभु भक्त-रक्षक है, उसे तुम अपने समीप ही अनुभव करो।

।। बिलावलु महला ९।।

हरि के नाम बिना दुखु पावै।।

भगति बिना सहसा नह चुकै गुरु इह भेदु बतावै।।१।।रहाउ।।

कहा भइओ तीरथ ब्रत कीए राम सरनि नही आवै।।

जोग जग निहफल तिह मानउ जो प्रभ जसु बिसरावै।।

मान मोह दोनौ कउ परहरि गोबिन्द के गुन गावै।।

कहु नानक इह बिधि को प्रानी जीवन मुकति कहावै।।२।।२।।

जीव प्रभु के नाम बिना दुख पाता है।
प्रभु-भक्ति के बिना संशय नहीं दूर होता,
गुरु ने यह भेद बता दिया। तीर्थ-स्नान
व व्रत-उपवास से क्या लाभ? योग,यज्ञ
आदि सभी कर्मों को व्यर्थ समझो,
जिन्होंने प्रभु के यश को भुला दिया है।
मान तथा मोह दोनों को त्याग कर ही
प्राणी जीवन मुक्त कहलाता है।

।। रागु बिभावलु महला ९ दुपदे ।।

जा मै भजनु राम को नाही ।।
तिह नर जनमु अकारथ खोइआ यह राखहु मन माही ।।१।।
रहाउ ।।
तीरथ करै ब्रत फुनि राखै नह मनूआ बसि जा को ।।
निहफल धरम ताहि तुम मानहु साचु कहत मै या कउ ।।१।।
जैसे पाहनु जल महि राखिओ भेदै नाहि तिहि पानी ।।
तैसे ही तुम ताहि पछानु भगति हीन जो प्रानी ।।२।।
कलि महि मुकति नाम तै पावत गुर यह भेदु बतावै ।।
कहु नानक सोई नरू गरूआ जो प्रभ के गुन गावै ।।३।।३।।

जिस प्राणी के हृदय में प्रभु-भजन की रुचि नहीं, उस प्राणी ने अपना जीवन व्यर्थ ही खो दिया, यह बात मन में सदा याद रखो। तीर्थों पर स्नान करें पुन: व्रत रखें फिर भी यदि मन अपने वश में नहीं है, उसके धर्म-कर्म को निष्फल समझो यह मैं विश्वास के साथ सत्य कहता हूँ। जैसे पत्थर जल के मध्य रख दिया जावै उसे जल भेदता नहीं वैसे ही तुम भक्तिहीन प्राणी को समझो। कलियुग में प्रभु के नाम स्मरण से मुक्ति प्राप्त होती है यह गुरु ने भेद बताया है वही प्राणी पूजनीय है जो प्रभु के गुण गाता है।

१. ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। रागु रामकली महला ९ तिपदे।।

रे मन ओट लेहु हरिनामा।।
जा कै सिमरनि दुरमति नासै पावहि पदु निरबाना।।१।।रहाउ।।
बडभागी तिह जन कउ जानहु जो हरि के गुन गावै।।
जनम जनम के पाप खोई कै फुनि बैकुंठि सिधावै।।१।।
अजामुल कउ अंति काल महि नाराइन सुधि आई।।
जो गति कउ जोगीसुर बाछत सो गति छिन महि पाई।।२।।
नाहिन गुनु नाहनि कछु बिदिआ धरमु कउनु गजि कीना।।
नानक बिरदु राम को देखो अभै दानु तिहि दीना।।३।।१।।

हे मन ! प्रभु के नाम का सहारा लो। जिसको याद करने से दुर्बुद्धि नष्ट होती है तथा मोक्ष पद की प्राप्ति होती है। उस प्राणी को भाग्यशाली समझो जो प्रभु के गुण गान करता है। जन्म-जन्मान्तरों के पापों को नष्ट करके वैकुण्ठ को जाता है। अजामिल पापी को अन्तिम समय प्रभु की याद आई। जिस परम गति को योगी(कठिन साधना) से पाना चाहते हैं वह गति अजामिल ने एक क्षण में पा ली। गज में कोई न कोई विद्या थी और उसने कौन सा धर्म किया था? प्रभु का यश देखो- उसने उस गज को भी अभय दान दे दिया।

रामकली महला ९ ।।

साधो कउनु जुगति अब कीजै ।।
जा ते दुरमति सगल बिनासै राम भगति मनु भीजै ।।१ ।।रहाउ ।।
मनु माइआ मै उरझि रहिओ है बुझै नह कुछ गिआना ।।
कउनु नामु जग जा कै सिमरै पावै पदु निरबाना ।।१ ।।
भए दइआल किरपाल संत जन तब इह बात बताई ।।
सरब धरम मानो तिह कीए जिह प्रभ कीरति गाई ।।२ ।।
राम नाम नर निसि बासुर महि निमख एक उर धारै ।।
जम को त्रासु मिटै नानक तिह अपुनो जनमु सवारै ।।९ ।।२ ।।

हे साधुजनों ! अब कौन सी युक्ति करें? जिस युक्ति से दुर्मति दूर हो जाए तथा प्रभु की भक्ति में मन लीन हो जाए। मन माया में उलझा हुआ है, आत्म ज्ञान की कुछ भी समझ नहीं है। संसार में वह कौन सा नाम है? जिसका स्मरण कर के जीव निर्वाण पद प्राप्त कर लेता है। सन्त जन जब दयालु हुए तो उन्होंने यह बात बताई, जिस प्राणी ने प्रभु-कीर्ति गाई है उसने सभी धर्म किए हैं। जो प्राणी प्रभु का दिन-रात में एक क्षण मात्र भी यदि अपने हृदय में स्मरण करे, उसका यम का भय दूर हो जाता है तथा अपना जन्म सफल कर लेता है।

।। रामकली महला ९ ।।

प्रानी नाराइनि सुधि लेह ।।
छिनु छिनु आउध घटै निस बासुर बिरथा जातु है देह ।।१।।रहाउ ।।
तरनापो बिखिअन सिउ खोइओ बालपनु अगिआना ।।
बिरध भइओ अजहू नही समझै कउनु कुमति उरझाना ।।१।।
मानस जनमु दीओ जिह ठाकुरि सो तै किउ बिसराइओ ।।
मुकति होत नर जाकै सिमरै निमख न ता को गाइओ ।।२।।
माइआ को मदु कहा करतु है संगि न काहू जाई ।।
नानक कहत चेति चिंतामनि होई है अंति सहाई ।।३।।३।।८१।।

हे प्राणी! तू प्रभु का स्मरण कर दिन रात क्षण-प्रति-क्षण आयु घट रही है तथा शरीर व्यर्थ नष्ट हो रहा है। बचपन अज्ञानता में बीत गया(और) यौवन विषय-विकारों में नष्ट कर दिया। बूढ़ा हो गया परन्तु अभी भी ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है किस दुर्मति में उलझा हुआ है? जिस प्रभु ने तुझे जन्म दिया है हे प्राणी! उस प्रभु को तूने क्यों भुला दिया? जिस प्रभु के स्मरण मात्र से मानव मुक्त हो जाता है उसका एक क्षण के लिए तूने स्मरण क्यों नहीं किया? माया का घमण्ड क्यों करता है जो अन्त समय किसी के साथ नहीं जाती। हे प्राणी! चिन्तामणि प्रभु का स्मरण कर जो अन्त समय तेरा सहायक होगा।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। मारू महला ९।।

हरि को नामु सदा सुखदाई।।

जा कउ सिमरि अजामलु उरधिओ गनिका हू गति पाई।।१।।रहाउ।।

पंचाली कउ राज सभा महि राम नाम सुधि आई।।

ता को दूखु हरिओ करूनामै अपनी पैज बढ़ाई।।१।।

जिह नर जसु किरपा निधि गाइओ ता कउ भइओ सहाई।।

कहु नानक मै इही भरोसै गही आन सरनाई।।२।।१।।

(हरि) प्रभु का नाम सदा सुखदाई है। जिस प्रभु का स्मरण करके अजामिल का उद्धार हो गया तथा गणिका ने परमगति पा ली। द्रोपदी को राजसभा में प्रभु की याद आई। उस करुणामय प्रभु ने द्रोपदी का दुःख दूर किया तथा अपने भक्त वछल की प्रतिज्ञा को बढ़ाया। जिस प्राणी ने कृपानिधि प्रभु का यश-गान किया, उसका प्रभु सदा सहायक हुआ है। मैंने इसी भरोसे पर हे प्रभु ! आप की शरण ली है।

।। मारू महला ९ ।।

अब मैं कहा करउ री माई ।।
सगल जनम बिखिअनि सिउ खोइओ सिमरिओ नाहि कनहाई ।।१ ।। रहाउ ।।
काल फास जब गर महि मेली तिह सुधि सभ बिसराई ।।
राम नाम बिनु या सकंटि महि को अब होत सहाई ।।१ ।।
जो संपति अपनी करि मानी छिन महि भई पराई ।।
कहु नानक यह सोच रही मनि हरि जसु कबहू न गाई ।।२ ।।२ ।।

हे माता! अब मै क्या करूँ? सारा जन्म विषय-विकारों में आसक्त होकर खो दिया, प्रभु का स्मरण नहीं किया। जब यम ने गले में फन्दा डाला तब उसने सारा ज्ञान भुला दिया। प्रभु-नार्म के सिवाय अब इस आपत्ति काल में अन्य कौन सहायक हो सकता है? जो धन-सम्पत्ति अपनी समझी थी वह एक क्षण में ही पराई हो गई। मन में चिन्ता बनी रही कि प्रभु का यश कभी नहीं गाया।

।। मारू महला ९ ।।

माई मै मन को मानु न तिआगिओ ।।

माइआ के मदि जनमु सिराइओ राम भजनि नही लागिओ ।।१।।रहाउ ।।

जम को डंडू परिओ सिर ऊपरि तब सोवत तै जागिओ ।।

कहा होत अब कै पछुताए छूटत नाहि न भगिओ ।।१।।

इह चिंता उपजी घट महि जब गुर चरनन अनुरागिओ ।।

सुफलु जनमु नानक तब हूआ जो प्रभ जस मै पागिओ ।।२।।३।।

हे माता ! मैंने मन का अंह नहीं छोड़ा। माया के नशे में सारा जन्म गंवा दिया। प्रभु भजन में मन नहीं लगाया। जब यम का डण्डा सिर पर आ पड़ा तो निद्रा से जाग गया। अब पश्चाताप करने से क्या होता है? हे अभागे प्राणी ! अब कोई मुक्ति का उपाय नहीं । जब गुरु के चरणों से प्रेम किया तब मन में यह चिन्ता उत्पन्न हुई। जब मन प्रभु-प्रेम के रंग में रंजित हो गया तब यह जन्म सफल हो गया।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

।। रागु बसंतु हिंडोल महला ९।।

साधो इह तनु मिथिआ जानउ।।
या भीतरि जो रामु बसतु है साचो ताहि पछानो।।१।।रहाउ।।
इहु जगु है संपति सुपने को देखि कहा उडानो।।
संगि तिहारै कछू न चालै ताहि कहा लपटानो।।१।।
उसतति निंदा दोऊ परहरि हरि कीरति उर आनो।।
जन नानक सभ ही मै पूरन एक पुरख भगवानो।।२।।१।।

हे सन्तो! इस शरीर को नश्वर समझो। इस शरीर के अन्दर जो प्रभु का अंश है उसे सत्य समझो। इस संसार की धन सम्पत्ति नश्वर है। इसे देखकर व्यर्थ ही क्यों अहंकार करता है? तेरे साथ कुछ नहीं चलेगा। अत: इस नश्वर सांसारिक वस्तुओं के साथ तू क्यों लिप्त है? स्तुति व निन्दा दोनों का त्याग कर प्रभु-यश हृदय में बसा। एक प्रभु का नाम ही सर्वव्याप्त है।

।। बसंतु महला ९ ।।

पापी होए मै कामु बसाइ।।
मनु चंचलु याते गहिओ न जाइ।।१।।रहाउ।।
जोगी जंगम अरु संनिआस।।
सभ ही परि डारी इह फास।।१।।
जिहि जिहि हरि को नामु समारि।।
ते भव सागर उतरे पारि।।२।।
जन नानक हरि की सरनाई।।
दीजै नाम रहै गुन गाई।।३।।२।।

इस प्राणी हृदय में काम बसा हुआ है। इस कारण यह चंचल मन वश में नहीं आ सकता है। योगी, जंगम तथा संन्यासी, इन सभी के ऊपर इस काम ने अपना फन्दा डाला हुआ है। जिस प्राणी ने प्रभु-नाम स्मरण किया है, वह संसार-सागर से पार उतर गया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि मैं दास प्रभु की शरण में आया हूँ। हे प्रभु! मुझे अपना "नाम" दीजिए जिससे मैं आपके गुण गाता रहूँ।

।। बसंतु महला ९ ।।

माई मै धनु पाइओ हरि नामु ।।
मनु मेरो धावन ते छूटिओ करि बैठो बिसरामु ।।१।।रहाउ।।
माइआ ममता तन ते भागी उपजिओ निरमल गिआनु ।।
लोभ मोह इह परसि न साकै गहि भगति भगवान।।१।।
जनम जनम का संसा चूका रतनु नामु जब पाइआ।।
तरिसना सकल बिनासी मन ते निज सुख माहि समाइआ।।२।।
जा कउ होत दइआलु किरपा निधि सो गोबिद गुन गावै।।
कहु नानक इह बिधि की सपै कोऊ गुरमुखि पावै।।३।।३।।

हे माता! मैंने प्रभु का नाम रूपी धन पा लिया। मेरा मन अब भटकने से छूट गया तथा अब प्रभु के नाम स्मरण (विश्राम) में स्थिर हो गया। माया और ममता तन मन से दूर हो गई तथा निर्मल ज्ञान का मन में उदय हुआ है। अब लोभ, मोह, इसे स्पर्श नहीं कर सकते क्योंकि प्रभु की भक्ति हृदय में बस गई है। जब नाम रूपी रत्न की प्राप्ति हुई तो जन्म-जन्मान्तरों का संशय दूर हो गया। मन से सम्पूर्ण तृष्णा का विनाश हो गया तथा मन सुख आनन्द में लीन हो गया। जिस पर कृपानिधि प्रभु दयालु होता है, वही प्राणी प्रभु के गुण गाता है। गुरु नानक देव ज़ी कहते हैं कि इस प्रकार की सम्पत्ति कोई गुरुमुख ही प्राप्त कर सक़ता है।

।। बसंतु महला ९ ।।

मन कहा बिसारिओ राम नामु ।।
तनु बिनसै जम सिए परै कामु ।।१।।रहाउ।।
इहु जगु धुए का पहार।।
तै साचा मानिआ किह बिचारि।।१।।
धनु दारा संपति गरे।।
कछु संगि ना चालै समझ लेह।।२।।
इक भगति नाराइन होइ संगि।।
कहु नानक भजु तिह एक रंगि।।३।।४।।

हे मन! तूने प्रभु का नाम क्यों भुला दिया। शरीर नष्ट होने पर यम से वास्ता पड़ेगा। यह विश्व धूएँ का पहाड़ है। तूने क्या सोच-विचार कर इसे सत्य माना है। पत्नी, सम्पत्ति गृह आदि, इन वस्तुओं में से कुछ भी तेरे साथ नही चलेगा ऐसा सत्य समझ ले। एक मात्र प्रभु की भक्ति ही तेरे साथ रहेगी। इसलिए एकाग्रमन से उस प्रभु का स्मरण कर।

।। बसंतु महला ९ ।।

कहा भूलिओ रे झूठे लोभ लाग।।
कछु बिगरिओ नाहनि अजहु जाग।।१।।रहाउ।।
सभ सुपनै कै इहु जगु जानु।। बिनसै छिन मै साची मानु।।१।।
संगि तेरै हरि बसत नीत।।
निस बासुर भजु ताहि मीत।।२।।
बार अंत को होइ सहाइ।। कहु नानक गुन ताके गाइ।।३।।५।।

हे जीव! झूठे लोभ के वशीभूत हो कर प्रभु को क्यों भुला रहा है। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, अभी भी जाग जा इस संसार को मिथ्या समझ। यह संसार एक क्षण में नष्ट हो जाएगा- इसे सत्य जान ले। प्रभु सदा तेरे साथ निवास करता है। हे मित्र! दिन-रात उस प्रभु का स्मरण कर, वही प्रभु अन्तिम समय सहायक होगा। अतः सदा उस प्रभु के गुणों का आश्रय ले।

१ ओंकार सतिगुर परसादि।।

राागु सारंग महला ९।।

हरि बिनु तेरो को न सहाई।।
काकी मात पितु सुत बनिता को काहू को भाई।।१।।रहाउ।।
धुन धरनी अरु संपति सगरी जो मानिओ अपनाई।।
तन छूटै कछु संगि न चालै कहा ताहि लपटाई।।२।।
दीन दइआल सद्रा दुख भंजन ता सिउ रुचि न बढ़ाई।।
नानक कहतु जगतुसभु मिथिआ जिउ सुपना रैनाई।।२।।१।।

हे जीव ! प्रभु के बिना तेरा कोई भी सहायक नहीं कौन किसकी माता,पिता, पुत्र तथा पत्नी है? तथा कौन किसका भाई है? धन, पृथ्वी व समपत्ति जो तूने अपनी मान रखी थी। शरीर छूटते ही कुछ भी साथ नहीं चलता है अतः तूने इन में स्वयं को क्यों लिप्त कर रखा है? दीनों पर दया करने वाले तथा सदा दुःखों को दूर करने वाले प्रभु से प्रेम न बढ़ाया। गुरु नानक देव जी कहते हैं यह सम्पूर्ण संसार रात्रि के स्वप्न के समान नश्वर है।

।। सांरग महला ९ ।।

कहा मन बिखिआ सिउ लपटाही।।
या जग महि कोऊ रहनु न पावै इक आवहि इक जाही।।१।।
रहाउ।।
काकी तनु धनु संपति काकी का सिउ नेहु लगाही।।
जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाही ।।१।।
तजि अभिमानु सरनि संतन गहु मुकति होहि छिन माही।।
जन नानक भगवंत भजन बिनु सुखु सुपने भी नाही।।२।।२।।

हे मन! विषय वासनाओं में क्यों आसक्त है? इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं रहता। एक आता है एक जाता है। किसका तन? किसका धन? किसकी सम्पत्ति? सांसारिक पदार्थ किसी के साथ नहीं जाते हैं फिर तूने किससे प्रेम किया है? अभिमान त्यागकर सन्तों की शरण ग्रहण कर। इस प्रकार एक क्षण में ही तू मुक्त हो जाएगा। प्रभु-भजन के बिना स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं होता।

।। सारंग महला ९ ।।

मन कहि कबहू न हरि गुन गाइओ ।।

बिखिआ सकति रहिओ निसि बासुर कीनो अपनो भइओ ।।१।।रहाउ।।

गुर उपदेसु सुनिओ नह काननि पर दारा लपटाइओ ।।

पर निंदिआ कारनि बहु धावत समझिओ नह समझाइओ ।।१।।

कहा कहउ मै अपनी करनी जिह बिधि जनमु गवाइओ ।।

कहि नानक सभि अउगन मो महि राखि लेहु सरनाइओ ।।

२।।४।।१३।।१३९।।४।।१५९।।

मन को एकाग्र कर अभी भी प्रभु के गुण नहीं गाए। दिन रात विषयों में आसक्त रहा इच्छानुसार कार्य किया। कानों से गुरु के उपदेश का श्रवण नहीं किया; पराई स्त्री में अनुरक्त रहा औरों की निन्दा करने में प्रयत्नशील रहता है। समझाने पर भी नही समझता। मैं अपनी करतूत का वर्णन कहां तक करूँ ? किस प्रकार मैंने अपना जन्म गंवा दिया ? गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे प्रभु ! मुझमें सभी अवगुण हैं शरणगत की रक्षा करो।

१ ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति
अजूनि सैभं गुर परसादि।।

।।रागु जैजावंती महला ९।।

रामु सिमरि रामु सिमरि इहै तेरे काजि है ।।
माइआ को संगु तिआगु प्रभु जू की सरनि लागु।।
जगतु सुख मानु मिथिआ झूठी सम साजु है।।१।।रहाउ।।
सुपने जिउ धनु पछानु।। काहे परि करत मानु ।।
बारू की भीति जैसे बसुधा को रराजु है।।१।।
नानकु जनु कहतु बात बिनसि जैसे तेरो गातु।।
छिनु छिनु करि गइओ कालु तैसे जातु आजु है।। २।। १।।

हे मानव ! उस प्रभु के नाम का स्मरण करते रहो यही तुम्हारा काम है। उसे सुचेत करते हुए कहते हैं कि तुम्हे माया से मोह छोड़ देना चाहिए और उस प्रभु की शरण में रहना चाहिए। सांसारिक सुख और मान -सम्मान सभी झूठ है। धन दौलत पर इनता गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि इस की स्थिति तो स्वप्न के समान है। यह संसार रेत की दीवार के समान अस्थिर है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि तेरा शरीर तो नाशवान है। दिन प्रतिदिन मृत्यु का फंदा तेरे ऊपर मंडराता रहता है।

।। रागु जैजावंती महला ९ ।।

रामु भजु रामु भजु जनमु सिरातु है।।
कहउ कहा बार बार समझत नह किउ गवार।।
बिनसत नह लागै बार ओरै सम गात है।।१।।रहाउ।।
सगल सरभ डारि देहि गोबिन्द को नामु लेहि ।।
अंति बार संगि तेरे इहै एक जातु है ।।१।।
बिखिआ बिखु बिसारि प्रभ को जसु हीए धारि।।
नानक जन कहि पुकारि अउसरु बिहातु है।।२।।२।।

हे जीव! निरन्तर प्रभु का भजन कर, तेरा जन्म बीत रहा हैं।मैं तुझे बार बार क्या कहूं, हे गंवार! तू समझता क्यों नहीं? इस तेरे शरीर को नष्ठ होने में समय नहीं लगेगा। यह तेरा शरीर ओले के समान क्षणभुंगर है। सारे भ्रमों को त्याग दे तथा निरन्तर प्रभु का नाम स्मरण कर। अन्तिम समय केवल यही एक नाम तेरे साथ जाता है। विषयों को विष के समान भुला दे, प्रभु के यश को हृदय में धारण कर । गुरु नानक देव जी कहते हैं कि प्रभु के नाम स्मरण का समय बीता जा रहा है अत: प्रभु को याद कर।

।। जैजावंती महला ९ ।।

रे मन कउन गति हुइ है तेरी।।
इह जग महि राम नामु ता तउ नही सुनिहि कानि।।
बिखिअन सिउ अति लुभानि मति नाहनि फेरी।।१।।रहाउ।।
मानस को जनमु लीनु सिमरनु नह निमख कीनु।।
दारा सुख भइओ दीन पगहु परी बेरी।।१।।
नानक जन कहि पुकारि सुपनै जिउ जगु पसारु।।
सिमरत नहि किउ मुरारि।।माइआ जा की चेरी।।२।।२।।

हे मन! नाम स्मरण के बिना तेरी कौन सी गति होगी? इस संसार में वास्तविक वस्तु राम नाम है उसको तूने ध्यानपूर्वक कानों से नहीं सुना। विषयों में अत्यन्त आसक्त होने के कारणप्रभु स्मरण की ओर तूने उस अपनी बुद्धि नहीं फेरी। मानव जन्म लेकर भी तूने एक क्षण के लिए प्रभु का स्मरण नहीं किया । स्त्री-सुख के वशीभूत हो तू दीन हो गया है। इस कारण तेरे पैरों में मोह की बेड़ी पड़ी हुई है। गुरु नानक देव जी पुकार पुकार कर कहते हैं कि यह जग स्वप्न के समान मिथ्या है। (उस) प्रभु का स्मरण क्यों नहीं करता? माया जिस (प्रभु) की दासी है।

।। जैजावंती महला ९ ।।

बीत जै है बीत जै है जनमु अकाजु रे।।
निसि दिनु सुनि कै पुरान समझिओ नह रे अजान।।
काल तउ पहूचिओ आनि कहा जै है भाजि रे।।१।।रहाउ।।
असथिरु जो मानिओ देह सो तउ तेरउ होई है खेह।।
किउ न हरि को नामु लेंहि मूरख निलाज रे।।१।।
राम भगति हीए आनि छाहि दे तै मन को मानु।।
नानक जन इहै बखान जग मै बिराजु रे ।।२।।४।।

हे जीव! तेरा अमूल्य जन्म व्यर्थ बीत रहा हैं। दिन-रात पुराणों का श्रवण करके भी हे मूर्ख ! समझता नहीं। अन्तिम समय यम जो आ पहुंचा, अब भागकर कहाँ जायेगा। जिस शरीर को तूने सदा स्थिर माना, वह तो नष्ट हो जाएगा। अत: हे निर्लज्ज मूर्ख ! प्रभु का नाम क्यों नहीं लेता? प्रभु की भक्ति कर तथा अन्य सभ की भक्ति को तथा अहंकारों को मन से त्याग दे। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि इस प्रकार संसार में निवास कर।

१ ओंकार सतिगुर परसाद ।।

।। सलोक महला ९ ।।

गुन गोबिंद गाइओ नही जनमु अकारथ कीनु ।।
कहु नानक हरि भजु मना जिहि बिधि जल कौ मीन ।।१।।

(हे मन!) प्रभु के गुण नहीं गाए। जन्म व्यर्थ ही बिता दिया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन ! जिस प्रकार मछली पानी से प्रेम करती है, वैसे ही तू भी निरन्तर प्रभु- स्मरण में लीन रह।

बिखिअन सिउ काहे रचिओ निमख प होहि उदासु ।।
कहु नानक भजु हरि मना परहि न जम की फासु ।।२।।

(हे मन!) विषय विकारों में सदा आसक्त क्यों रहा? एक क्षण के लिए भी उदासीन क्यों नहीं हुआ? गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन! प्रभु का भजन कर, जिससे तेरे गले में यम का फन्दा न पड़े।

तरनापो इह ही गइओ लीओ जरा तनु जीति ।।
कहु नानक भज हरि मना अउध जातु है बीति ।।३।।

विषय-वासनाओं में लीन यौवन व्यर्थ ही बीत रहा गया, वृद्धावस्था में इन्द्रियों ने तन को शिथिल कर दिया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन! प्रभु का भजन कर आयु बीत रही है।

बिरधि भइओ सूझै नही कालु पहूचिओ आन।।
कहु नानक नर बावरे किउ न भजहि भगवानु।।४।।

वृद्ध हो गया कुछ सूझता ही नहीं, अन्तिम समय आ पहुँचा। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे बावरे जीव! प्रभु का भजन क्यों नहीं करता?

धन दारा संपत्ति सगल जिनि अपुनी करि मानि।।
इन मै कछु संगी नही नानक साची जानि।।५।।

धन,स्त्री सम्पूर्ण सम्पत्ति आदि,जिसे तूने अपनी मान रखा है। हे मानव! इस सब अन्त में तेरा कोई साथ नहीं देगा, यह बात सत्य समझ।

पतित उधारन भै हरन हरि अनाथ के नाथ।।
कहु नानक तिह जानीए सदा बसत तुम साथि।।६।।

प्रभु पापियों का उद्धार करने वाला है, भय को दूर करने वाला है, अनाथों का नाथ है गुरु नानक देव जी क़हते हैं उस प्रभु को सदा याद ऱखो, जो सर्दत्र-सर्वत्र तुम्हारे साथ रहता है।

तनु धनु जिउ तो कउ दीओ ता सिउ नेहु न कीन।।
कहु नानक नर बावरे अब किउ डोलत दीन।।७।।

जिस ने तुझे तन तथा प्राण दिये हैं
उस (प्रभु) से तूने प्रेम नहीं किया।
गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे
मूर्ख प्राणी अब दीनों के समान क्यों
डोलता फिरता है?

तनु धनु संपै सुखु दीओ अरु जिह नीके धाम।।
कहु नानक सुनु रे मना सिमरत काहि न राम ।।८।।

जिस ने तुम्हें शरीर, धन-समपत्ति,
सुन्दर गृह तथा सभी प्रकार के सुख
दिए हैं। गुरु नानक देव जी कहते
हैं कि हे मन! उस राम का स्मरण
क्यों नहीं करता?

सभ सुख दाता रामु है दूसर नाहिन कोइ।।
कहु नानक सुनि रे मना तिह सिमरत गति होइ।।६।।

सभी सुखों का दाता प्रभु है, अन्य
दूसरा कोई नहीं। गुरु नानक देव जी
कहते हैं कि मन सुन! उस प्रभु के
स्मरण से ही तेरी सद्गति होगी।

जिह सिमरत गति पाईऐ तिहि भजु रे तै मीत।।
कहु नानक सुनु रे मना अउध घटत है नीत।।१०।।

हे मित्र ! जिसका स्मरण करने से मोक्ष प्राप्ति होती है उसका नित्य भजन कर। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन ! ध्यानपूर्वक सुन आयु नित्य प्रति घटती जा रही है।

पांच तत तनु रचिओ जरनहु चतुर सुजान।।
जिह ते उपजिओ नानका लीन ताहि महि मानि।।११।।

हे चतुर ज्ञानी जीव ! यह ज्ञान लो कि इस शरीर को प्रभु ने तत्त्वों से रचा है। हे मानव! जिस पांच तत्त्वों से यह शरीर उत्पन्न हुआ है उन्हीं पाचं तत्त्वों मे लीन हो जाएगा, इसे सत्य मानों।

घटि घटि मै हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि।।
कहु नानक तिह भजु मना भउतिधि उतरहि पारि।।१२।।

प्रत्येक हृदय में प्रभु का निवास है यह सन्तों ने पुकार पुकार कर कहा है कि गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन ! उस प्रभु का स्मरण कर ,जिस से तू भवसागर से पार हो जाएगा।

सुखु दुखु जिह परसै नही लोभ मोह अभिमानु ।।
कहु नानक सुन रे मना सो मूरति भगवान।।१३।।

जिस प्राणी को सुख, दुःख लोभ, मोह तथा अहंकार स्पर्श नहीं करते हैं गुरु नानक देव जी कहते हैं। हे मन ! सुन वह (प्राणी) प्रभु की मूर्ति है।

उसतति निदिंआ नाहि जिह कंचन लोह समानि।।
कहु नानक सुनु रे मना कुकति ताहि तै जानि।।१४।।

जिस को स्तुति और निन्दा र्स्पश नहीं करते तथा जिसके लिए र्स्वण व लोह समान हैं। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन! सुन, उसे तू मुक्त जीव समझ।

हरख सोगु जा कै नही बैरी मीत समानि।।
कहु नानक सुनु रे मना मुकति ताहि तै जान।।१५।।

जिसे हर्ष व शोक नहीं होता, जिसके लिए बैरी तथा मित्र समान हैं गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन ! सुन उसे तू मुक्त पुरुष जान।

भै काहु कउ दत नहि नहि भै मानत आनि।।
कहु नानक सुन रे मना गिआनि ताहि बखानि।।१६।।

जो न किसी को भय देता है तथा न किसी से भय मानता है। हे मन ! गुरु नानक देव जी कहते हैं कि उसे ज्ञानी पुरुष कहो।

जिह बिखिआ सगली तजी लीओ भेख बैरागु।।
कहु नानक सुनु रे तना तिह नर माथै भागु।।१७।।

जिसने सम्पूर्ण विषय-वासना त्याग दी, विरक्त वेश धारण कर लिया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन ! सुन उस प्राणी के मस्तक का उत्तम भाग्य समझो।

जिहि माइआ ममता तजी सभ ते भइओ उदासु।।
कहु नानक सुनु रे मना तिहि घटि ब्रहम निवासु।।१८।।

जिस प्राणी ने माया, ममता त्याग दी तथा सभी विषयों से उदासहीन हो गया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन ! सुन उसके हृदय में बह्मा का निवास है।

जो प्राणी ममता तजै लोभ मोह अंहकार।।
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार।।२२।।

जो प्राणी ममता,लोभ, मोह तथा अहंकार को त्याग देता है गुरु नानक देव जी कहते हैं कि भवसागर से तर जाता है। अन्य (संगी साथियों) को भी पार उतार लेता है।

जिउ सुपना अरू पेखना ऐसे जग कउ जानि।।
इन महि कछु साचो नही नानक बिनु भगवान।।२३।।

जिस प्रकार स्वप्न में किसी पदार्थ का देखना मिथ्या है, उसी प्रकार संसार को समझ। हे मानव! इस सांसारिक पदार्थों में प्रभु के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है।

निसदिनु माइआ कारने प्रानी डोलत नीत।।
कोटन महि नानक कोऊ नाराइन जिह चीति।।२४।।

प्राणी, माया एकत्र करने के लिए रात-दिन भटकता रहता है। हे नानक! कोई बिरला ही प्राणी होगा जिसके अन्त: करण में प्रभु का वास होता है।

जैसे जल ते बुदबुदा उपजे बिनसै नीत।।
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुनि मीत।।२५।।

जिस प्रकार जल पर हवा का बुलबुला उत्पन्न तथा विनष्ट होता रहता है, गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मित्र ! वैसे ही संसार की रचना प्रभु ने रची है।

प्रानी कहु न चेतई मदि माइआ कै अंध।।
कहु नानक बिनु हरि भजन परत ताहि जम फंध।।२६।।

माया के मद में मदमस्त प्राणी किंचितमात्र भी प्रभु को स्मरण नहीं करता गुरु नानक देव जी कहते हैं कि प्रभु भजन के बिना प्राणी यम के बन्धनों में पड़ा रहता है।

जउ सुख कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह।।
कहु नानक सुनि रे मना दुरलभ मानुख देह।।२७।।

जो प्राणी सदा सुख चाहता है वह प्रभु की शरण ग्रहण करे। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि यह मानव शरीर दुर्लभ है(इस मानव-जन्म की प्राप्ति दुर्लभ है)।

माइआ कारनि धावही मूरख लोग अजान।।
कहु नानक बिनु हरि भजन बिरथा जनमु सिरान।।२६।।

माया एकत्रित करने के लिए मूर्ख अज्ञानी जन भाग-दौड़ करते हैं। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि प्रभु भजन के बिना मानव जन्म व्यर्थ गंवाते हैं।

जो प्रानी निसदिनु भजै रूप राम तिह जानु।।
हरि जनि अंतरु नही नानक साची मानु।।३०।।

जो प्राणी प्रतिदिन प्रभु का भजन करजा है उसे प्रभु स्वरूप जान। हे नानक ! प्रभू तथा प्रभु-भक्त में कोई अन्तर नहीं, यह बात सत्य मान।

मनु माइआ महि फंधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु।।
कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने कामु।।३१।।

जिस प्राणी का मन सदा माया में फंसा रहा, तथा जिसने प्रभु के नाम को भुला दिया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि उसका जीवन प्रभु के भजन के बिना किस काम का है।

प्रानी रामु न चेतई मदि माइआ कै अंधु।।
कहु नानक हरि भजन बिनु परत ताहि जम फंद।।३१।।

मद तथा माया के अहं में गर्वित
मूर्ख प्राणी "प्रभु" के नाम का
स्मरण नहीं करता। गुरु नानक देव
जी कहते हैं कि प्रभु भजन के बिना
उसके गले में यम का फन्दा पड़
जाता है।

सुख में बहु संगी भए दुख मै संगि न कोइ।।
कहु नानक हरि भजु मना अंति सहाई होइ।।३२।।

सुख के समय बहुत मित्र साथी
बन जाते हैं दुःख के समय कोई
भी मित्र नहीं बनता। गुरु नानक
देव जी कहते हैं कि प्रभु का
भजन कर जो अन्त समय तेरा
सहायक होगा।

जनम जमन भरमत फिरिओ मिटिओ न जम को त्रासु।।
कहु नानक हरि भजु मना निरभै पावहि बासु।।३३।।

जन्म-जन्मान्तर भटकता फिरा
पर यम का भय दूर नहीं हुआ
गुरू नानक कहते है कि हे मन!
प्रभु का स्मरण कर जिससे तू
भयरहित (निर्भय) स्थान को
प्राप्त कर ले।

जतन बहुतु मै करि रहिओ मिटिओ न मन को मानु।।
दुरमति सिउ नानकु फंधिओ राखि लेहु भगवान।।३४।।

मैंने बहुत यत्न किए परन्तु मेरे
मन का अहंकार दूर नहीं हुआ।
हे नानक ! मैं दुर्मति में फंसा
हूँ। हे प्रभु ! मेरी रक्षा करो।

बाल जुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवसथा जानि।।
कहु नानक हरि भजन बिनु बिरथा सभ ही मान।।३५।।

बाल, यौवन, बुढ़ापा ये तीन अवस्थाएं
हैं गुरु नानक देव जी कहते हैं कि
प्रभु के बिना सभी कुछ व्यर्थ है, यह
बात सत्य कर के मान ले।

करणो हुतो सु ना कीओ परिओ लोभ कै फंध।।
नानक समिओ रमि गइओ अब किउ रोवत अंध।।३६।।

जो करने योग्य था वह नहीं किया,
लोभ के फन्दे में पड़ा रहा । हे
नानक ! प्रभु स्मरण का समय अब
निकल रहा है ! हे अन्धे प्राणी ! अब
क्यों रोता फिरता है?

मनु माइआ मै रमि रहिओ निकसत नाहि न मीत।।
नानक मूरति चित्र जिउ छाडित नाहि न भीत।।३७।।

हे मित्र ! माया में रमा हुआ मन उस से बाहर नहीं निकलता, गुरु नानक देव जी कहते हैं कि जैसे दीवार पर अंकित मूर्ति (चित्र) अपने आधार दीवार को नहीं छोड़ती है,वैसे ही तू भी प्रभु की शरण में रहो।

नर चाहत कछु अउर की अउरै भई।।
चितवत रहिओ ठगउर नानक फासी गलि परी।।३८।।

मनुष्य कुछ अन्य ही चाहता है परन्तु प्रभु की इच्छा और से कुछ और हो जाती है। मानव अपने मन में दूसरों को छलने की युक्तियां सोचता रहता है। पर हे नानक!तेरे गले में कब यम का फन्दा पड़ जाता है तुझे पता ही नहीं पड़ता।

जतन बहुतु सुख के कीए दुख को कीओ न कोइ।।
कहु नानक सुन रे मना हरि भावै सो होइ।।३९।।

सुख-प्राप्ति के यत्न जो बहुत किए पर दुःख-निवृति का कोई यत्न नहीं किया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन ! सुन जो प्रभु की इच्छा है, वही होगा।

जगतु भिखारी फिरतु है सभ को दाता रामु।।
कहु नानक मन सिमरू तिह पूरन होवहि काम।४०।।

सबको देने वाला एक प्रभु है शेष यह सम्पूर्ण जगत भिक्षु बना घूमता फिरता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि हे मन! उस प्रभु का स्मरण कर, तेरे जीवन के सभी कार्य पूर्ण हो जायेंगे।

झूठै मानु कहा करै जगु सुपने जिउ जानि।।
इन महि कछु तेरो नही नानक कहिओ बखानि।।४१।।

मिथ्या अभिमान क्यों करता है? इस संसार को स्वप्नवत् समझ। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि इन सांसारिक पदार्थों में तेरा स्वयं का कुछ नहीं इसे शाश्वत् सत्य मान।

गरबु करतु है देह को बिनसै छिन महि मीत।।
जिह प्रानी हरि जसु कहिओ नानक तिहि जसु जीतु।।४२।।

हे मित्र! इस शरीर का अभिमान करता है, जो एक क्षण में नष्ट हो जाएगा। हे नानक! जिस प्राणी ने प्रभु का यशोगान किया है उसने सम्पूर्ण विश्व को जीत लिया है।

जिह घटि सिमरनु राम को सो नरु मुकता जानु।।
तिहि नर हरि अंतरु नही साची मानु।।४३।।

जिस प्राणी के हृदय मे प्रभु–स्मरण
विद्यामान है उसे तुम मुक्त प्राणी
समझो। हे नानक ! उस प्राणी तथा
प्रभु में कोई अन्तर नहीं, यह बात
सत्य कर के मानो।

एक भगति भगवान जिह प्रानी कै नाहि मनि।।
जैसे सूकरु सुआन नानक मानो ताहि तनु।।४४।।

जिस प्राणी के मन में एक प्रभु की
भक्ति नहीं। हे नानक ! उस प्राणी
के शरीर को सूअर और कुत्ते के
समान मानों।

सुआमी को गिरहु जिउ सदा सुआन तजत नही नित।।
नानक इह बिधि हरि भजउ इक मनि हुइ इकि चित।।४५।।

जिस प्रकार कुत्ता अपने मालिक के
घर को कभी नहीं त्यागता है, इसी
प्रकार हे नानक ! एकाग्रमन तथा
एकाग्रचित्त होकर प्रभु का स्मरण
करो।

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु।।

नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु।।४६।।

तीर्थ-सेवन, व्रत तथा दान करके सदा प्राणी मन में अहंकार रखता है। हे नानक ! उसके ये सभी पुण्य कर्म असी प्रकार हो जाते हैं जिस प्रकार हाथी का स्नान करना व्यर्थ है।

सिर कंपिओ पग डगमगै नैन जोति ते हीन।।

कहु नानक इह बिधि भई तउ न हरि रस लीन।।४७।।

सिर कांपने लगा, पैर डगमगाने लगे, नेत्र ज्योतिहीन हो गए।(वृद्धावस्था आ गई)। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि इस प्रकार की अवस्था हो गई , प्राणी फिर भी प्रभु-स्मरण के रसास्वादन में लीन नहीं होता है।

निजि करि देखिओ जगतु मै को काहू को नाहि।।

नानक थिरु हरि भगति है तिह राखो मन माहि।।४८।।

इस संसार को अपना बना कर देख लिया, इस संसार में कोई किसी का

नहीं। हे नानक ! प्रभु की भक्ति ही एक स्थिर पदार्थ है उसे मन में बसाओ।

जग रचना सभ झूठ है जानि लेहू रे मीत।।
कहि नानक थिरु न रहै जिउ बालू की भीत।।४९।।

हे मित्र! जान लो कि सम्पूर्ण संसार की रचना मिथ्या है गुरु नानक देव जी कहते हैं कि रेत की दीवार के समान कुछ भी जहाँ स्थायी नहीं है।

रामु गइओ रावनु गइओ जा कउ बहु परवारु।।
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने जिउ संसारि।।५०।।

भगवान रामचन्द्र तथा रावण भी इस संसार से चले गए जिनका बहुत बड़ा परिवार था। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि संसार स्वप्न के समान है।

चिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ।।
इकु मारगु संसार को नरक थिरु नही कोइ।।५१।।

जो न होने वाली बात हो उसकी चिन्ता करो। हे नानक ! इस संसार

रूपी मार्ग में यहां कुछ भी स्थिर नहीं
है।

जो उपजिओ सो बिनसि है परो आजु के काल।।
नानक हरि गुन गाइ ले छाडि सगल जंजाल।।५२।।

जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट हो जाएगा। इसलिए हे नानक! सभी संसार के झंझटों को त्यागकर प्रभु के गुण गा ले।

दोहरा

बलु छुटिओ बंधन परे कछू न होत उपाइ।।
कहु नानक अब ओट हरि गजि जिउ होहु सहाइ।।५३।।

शक्ति क्षीण हो गई सांसरिक बन्धनों ने घेर लिया। अब कुछ भी मुक्ति का उपाय नहीं हो सकता गुरु नानक देव जी कहते हैं कि अब हे प्रभु तेरी शरण ही एक मात्र मेरी मुक्ति का आश्रय हैं। अत: मेरे उसी प्रकार सहायक हो जाओ जिस प्रकार गज के सहायक हुए थे।

बलु होआ बंधन छुटे सभ किछु होत उपाइ।।
नानक सभ किछु तुमरै हाथि महि तुम ही होत सहाइ।।५४।।

(जब प्रभु की कृपा-दुष्टि) शक्ति सबल(जागृत) हो गई, बन्धन टूट गए मुक्ति के सभी साधन असम्भव हो गए। हे नानक (हे प्रभु !) सभी कुछ तुम्हारे हाथ में हैं, तुम ही मेरे सहायक हो।

संग सखा सभि तजि गए कोऊ न निबहिओ साथि।।
कहु नानक इह बिपट महि टेक एक रघुनाथ।।५५।।

संगी, साथी, मित्र सभी साथ छोड़

गए, कोई भी साथ नहीं निभा पाया। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि इस विपत्ति में एक प्रभु का ही तो सहारा है।

नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुरु गोबिंद।।
कहु नानक इह जगत महि किन जपिओ गुरमंत।।५६।।

प्रभु का नाम,साधु तथा प्रभु सदा अमर है गुरु नानक देव जी कहते हैं कि इस संसार में किसी विरले जीव ने ही गुरु का उपदेश लेकर प्रभु-नाम स्मरण किया है।

राम नामु उरि महि गहिओ जा कै सम नही कोइ।।
जिह सिमरत संकट मिटै दरसु तुहारो होइ।।५७।।

राम नाम के तुल्य कोई नहीं, जिस प्राणी के हृदय में यह रामनाम प्रवेश कर गया वह प्राणी श्रेष्ठ है। जिस नाम के स्मरण से संकट मिट जाते हैं तथा आपके दर्शन हो जाते हैं उसे मन में धारण करो।

निवेदन श्री गुरू तेग बहादुर जी की वाणी का सरलार्थ करते समय अगर कोई भूल हो गई हो तो ''वाहिगुरु'' से क्षमा चाहते हैं।
सम्पादक द्वय :- निर्मल कौशिक, कामायनी कौशिक

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी पुस्तकें गुरु तेग बहादुर : सपांदक : प्रेम प्रकाश सिंह, पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला
जीवन, दर्शन और विवेचन **1976**

गुरु तेग बहादुर जी, डॉ. शमीर सिंह, प्रेम नगर, अमृतसर ; जीवन , काव्य व चिन्तन **1976**

नवम् गुरु पर बारह निबन्ध , सम्पादक रमेश कुन्तल मेघ, गुरु नानक देव विशविद्यालय अमृतसर **1982**

वाणी गुरु तेग बहादुर : सम्पादक : प्यारा सिंह पदम , भाषा विभत पंजाब पटियाला . **1970**

श्री गुरु तेग बहादुर
संक्षिप्त जीवनी , गुरवाणी ; सम्पादक : गुरुदेव कौर जी.एस.आनन्द भावार्थ सहित पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला **1936**

वैराग्यमयी वाणी अनुवादक लक्ष्मण चेलाराम, मिज थाऊँ

गुरु तेग बहाअुर महला नौवा : मूल पाठ : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर

पंजाबी पुस्तकें

1. गुरू तेग बहादुर : जीवन सन्देश ते शहादत — सम्पादक : डा० तारन सिंह, पंजाबी यूनीवर्सिटी पटियाला **1976**

2. गुरू तेग बहाअुर : जीवन समां ते रचना — सम्पादक : सुरिन्दर सिंह कोहली पंजाब यूनीवर्सिटी पटियाला।

3. श्री गुरू तेग बहादुर जीवन दर्शन ते कला — गुरमुख सिंह एम.ए. **1975**

टीकाकार सोढी तेजा सिंह, चतर सिंह

4. सलोक महला ९ सटींक — जीवन सिंह अमृतसर-**1990**

5. जीवन गुरू तेग बहादुर जी — राजा सर दलजीत सिंह, लाहौर बुक शाप लुधियाना **1975**

6. साहित्य सन्दर्भ — डा. हरमहेन्द्र सिंह बेदी , पंजाबी लेखक सहकारी संस्थान, अमृतसर -**1990**

कृतज्ञता उपरोक्त जिन विद्वान लेखकों सम्पादकों की पुस्तकों से श्री गुरु तेग बहादुर जी की वाणी को सरल अर्थ सहित सम्पादित करने में सहायता मिली है। सम्पादक उनके कृतज्ञ हैं।